ई-पत्रिका
₹ 49/-

▶ **काबुल की**
नई कूटनीति

▶ **विनाश का बहिखाता**
ट्रंप के ईरान युद्ध का निष्ठुर यथार्थ

CULT CURRENT

वर्ष: 9 अंक: 6 जुलाई, 2026

WE MAKE VIEWS

GEN Z:
नई सभ्यता की पहली पीढ़ी

Let's
360°
Media Consultancy
Web solution
Advertising
Publication
Languages Services
Survey & Research
Branding
AV Production
Campaign management
Event organizer
PR partner, PR associate
Content writer & provider
Media analyst
URJAS MEDIA VENTUE IS PERHAPS THE ONLY CONSULTING FIRM THAT CAN GIVE YOUR ORGANISATION A 360 DEGREE MEDIA BUSINESS GROWTH CONSULTING THROUGH IT'S 360 CAPABILITIES. FOR US, CONSULTING DOES NOT ONLY MEAN MECHANICAL COST REDUCTION THROUGH BETTER IT APPLICATIONS, WE FIND OUT WHAT YOUR ORGANISATION REALY NEEDS AND GIVE YOU AN INTELLECTUAL SOLUTION THAT HELP YOU REDUCE COST AS WELL AS HELPS YOURS BUSINESS GROW AND BEAT THE COMPETITION.
NOW!!
OUR CONSULTANT WILL GET BACK TO YOU IN 24 HOURS AND PUT YOU IN TO THE HIGH GROWTH PATH
URJAS MEDIA
VENTURE
BEAT THE COMPETITION
www.urjasmedia.com
SMS 'BUSINESS GROWTH'
TO +91-8826-24-5305 OR
E-MAIL info@urjasmedia.com

गुमनाम नायक

बुंदेलखंड का 'वॉटर हीरो'

रामबाबू

'धौरा तेरा पानी, गजब करी जाए, गगरी न फूटे, खसम मर जाए'

बुंदेलखंड की यह लोकपंक्ति बताती है कि यहां पानी की एक मटकी भी जीवन से कम नहीं। इसी प्यासे अंचल के छोटे-से गांव अधांव में जन्मे राम बाबू तिवारी ने बचपन से पानी की कमी का दर्द देखा। दसवीं के बाद पढ़ाई के लिए शहर पहुंचे तो पहली बार शॉवर से बहते पानी को देखकर उन्हें अपने गांव की प्यास याद आ गई। दोस्तों ने तंज कसते हुए कहा, 'अगर पानी बचाना है तो गांव जाकर बचाओ।'

यही चुनौती उनके जीवन का संकल्प बन गई। छुट्टियों में गांव लौटकर उन्होंने साथियों के साथ 'पानी चौपाल' की शुरुआत की। गांव-गांव बैठकों, नुक्कड़ नाटकों, धार्मिक आयोजनों और श्रमदान के जरिए लोगों को जल संरक्षण से जोड़ा। देखते ही देखते उनके अभियान ने जनआंदोलन का रूप ले लिया।

पिछले दस वर्षों में राम बाबू ने पूरे बुंदेलखंड में 5,000 जल मित्र तैयार किए और 75 सूखे तालाबों का पुनर्जीवन कराया। आज ये तालाब वर्षाजल संचित कर हजारों ग्रामीणों की प्यास बुझा रहे हैं। राम बाबू तिवारी ने साबित कर दिया कि बदलाव सरकारें ही नहीं, एक जागरूक नागरिक भी ला सकता है।

संपादकीय टोली

संपादकीय

राष्ट्रीय संपादक
संजय श्रीवास्तव

संपादक
श्रीराजेश

प्रबंध संपादक
सच्चिदानंद पाण्डेय

रोमिंग संपादक
डॉ. राजाराम त्रिपाठी

राजनीतिक संपादक
अंशुमान त्रिपाठी

मेट्रो संपादक
शक्ति प्रकाश श्रीवास्तव
डॉ. रुद्र नारायण

अंतर्राष्ट्रीय संपादक
श्रीश पाठक

कारपोरेट संपादक
गगन बत्रा

साहित्य संपादक
अनवर हुसैन

डिजीटल संपादक
जलज श्रीवास्तव

सहायक संपादक
संदीप कुमार

उप संपादक
मनोज कुमार
संतु दास

कला संपादक
जया वर्मा

वेब एवं आईटी विशेषज्ञ
अनुज कुमार सिंह

फोटो संपादक
विवेक पाण्डेय

विशेष संवाददाता
कमलेश झा
विकास गुप्ता

संवाददाता
संदीप सिंह
अनिरुद्ध यादव

ब्यूरो प्रमुख (अंतर्राष्ट्रीय)
अकुल बत्रा (अमेरिका)
सी.शिवरतन (नीदरलैंड)
जी. वर्मा(लंदन)
डॉ. मो. फहीम अकबर (पाकिस्तान)
ए. असगरजादेह (ईरान)
डॉ. निक सेरी (मलेशिया)

ब्यूरो प्रमुख (राष्ट्रीय)
राकेश नरवाल (नई दिल्ली)
संजय कुमार सिंह (लखनऊ)
कैप्टन सुधीर सिन्हा (रांची)
निमेष शुक्ल (पटना)
नागेन्द्र सिंह (कोलकाता)
राकेश रंजन (गुवाहाटी)

विपणन
सत्यजीत कर्मकार
महाप्रबंधक

ऑनलाइन प्रसार
सृजीत डे

वर्षः 9 अंकः 6 जुलाई, 2026

Follow us:
fb.com/cultcurrent @Cult_Current cultcurrent@gmail.com

URJAS MEDIA VENTURE
Head office: Swastik Apartment, GF, Pirtala, Agarpara, Kolkata 700 109, INDIA, Tel: +91 6289-26-2363
Corporate Office: 14601, Belaire Blvd, Houston, Texas 77083 USA Tel: +1 (832) 670-9074
Web: http://cultcurrent.in

Cult Current is a monthly e-magazine published by Urjas Media Ventures from Swastik Apartment, GF, Pirtala, Agarpara, Kolkata 700 109.
Editor: Srirajesh

Disclaimer: All editorial and non-editorial positions in the e-magazine are honorary. The publisher and editorial board are not obligated to agree with all the views expressed in the articles featured in this e-magazine. Cult Current upholds a commitment to supporting all religions, human rights, nationalist ideology, democracy, and moral values.

CONTENT

COVER STORY

30

12

काबुल की नई कूटनीति

16

आधी आबादी अधूरी राजनीति

22

नैरेटिव का कुरुक्षेत्र	24
विनाश का बहिखाता	26
स्याही, सत्ता और सत्य	60
विस्मृति की धूल	64
विद्युत विवर्तन	68
वैश्विक समुद्री शासन का नया सवेरा	71
प्रशांत का संकुचन	72

76

क्या फिल्मों को अलविदा कह रही हैं तृषा?

Small talk

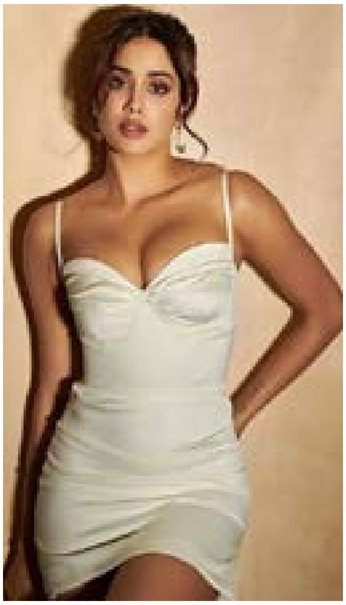

'Peddi' के प्रमोशन में मचा बवाल, जान्हवी कपूर फिर सुर्खियों में!

जान्हवी कपूर की फिल्म Peddi का प्रमोशनल इवेंट सुर्खियां बटोरने निकला था, लेकिन लाइमलाइट फिल्म नहीं, बल्कि बेंगलुरु में हुआ बवाल ले उड़ा। सोशल मीडिया पर वायरल एक वीडियो में महिला प्रशंसकों के साथ सुरक्षा कर्मियों के कथित दुर्व्यवहार का दावा किया गया, जिसके बाद #Peddi और जान्हवी कपूर ट्रेंड करने लगे। दिलचस्प बात यह रही कि जान्हवी खुद किसी विवाद में नहीं थीं, फिर भी पूरा हंगामा उनकी फिल्म के नाम से जुड़ गया। नेटिज़न्स ने इवेंट मैनेजमेंट की जमकर क्लास लगाई और देखते ही देखते प्रमोशन पर विवाद का ऐसा तड़का लगा कि फिल्म की चर्चा से ज्यादा वायरल क्लिप और अफरा-तफरी सुर्खियां बटोरने लगी।

2026 में तहलका मचाने वाली खोजें

कॉस्मिक रहस्य का समाधान!

एक नई क्रांतिकारी शोध में ब्रह्मांड के 'लापता' पदार्थ की स्थिति का पता लगा लिया गया है, साथ ही अब तक का सबसे दूरस्थ फास्ट रेडियो बर्स्ट (एफआरबी) भी रिकॉर्ड किया गया है। हार्वर्ड-स्मिथसोनियन सेंटर फॉर एस्ट्रोफिज़िक्स (सीएफए) और कैलटेक के खगोलशास्त्रियों ने एफआरबी को एक उपकरण के रूप में उपयोग करते हुए यह खोज की कि ब्रह्मांड के सामान्य पदार्थ का तीन-चौथाई से भी अधिक हिस्सा आकाशगंगाओं के बीच फैली बेहद पतली गैस में मौजूद है।

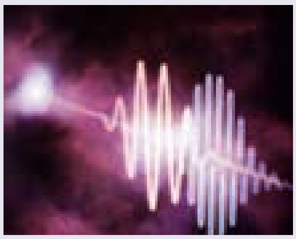

प्लास्टिक जो बैक्टीरिया से लड़े!

नॉटिंघम विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने प्लास्टिक की सतह पर ऐसे विशेष पैटर्न खोजे हैं, जो बैक्टीरिया को बढ़ने से काफी हद तक रोक सकते हैं। यह खोज मेडिकल उपकरणों - जैसे कि कैथेटर - पर संक्रमण रोकने में बेहद उपयोगी साबित हो सकती है। बायोफिल्म्स एक चिपचिपी परत होती हैं जो बैक्टीरिया को शरीर की प्राकृतिक रोग प्रतिरोधक प्रणाली से बचाती हैं। चूंकि कई चिकित्सा उपकरण प्लास्टिक से बने होते हैं और अस्पतालों में आमतौर पर उपयोग किए जाते हैं।

पृथ्वी से निकल रहा सोना!

वैज्ञानिकों ने एक चौंकाने वाला प्रमाण खोजा है कि सोने जैसे कीमती धातु पृथ्वी के भीतरी कोर से निकलकर मेंटल तक पहुंच रही हैं- और अंततः सतह पर, जैसे कि हवाई जैसे स्थानों में प्रकट हो रही हैं। रुथेनियम में सूक्ष्म समस्थानिक (isotopic) अंतर पहचानने की एक नई तकनीक का उपयोग करते हुए, शोधकर्ताओं ने एक विशेष संकेत पकड़ा जो पृथ्वी के गहरे कोर से आने वाली सामग्री की ओर इशारा करता है।

नई क्वांटम एम्प्लीफायर: अब 90% कम ऊर्जा में काम!

क्वांटम कंप्यूटर वे समस्याएँ हल करने की क्षमता रखते हैं जो आज के सबसे शक्तिशाली सुपरकंप्यूटरों के लिए भी असंभव हैं - चाहे वह दवा खोज हो, साइबर सुरक्षा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता या लॉजिस्टिक्स। अब स्वीडन की चाल्मर्स यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्नोलॉजी के शोधकर्ताओं ने एक महत्वपूर्ण सफलता हासिल की है, जो हमें उस भविष्य के और करीब ले जाती है। उन्होंने एक अल्ट्रा-प्रभावी एम्प्लीफायर विकसित किया है जो केवल तब सक्रिय होता है जब क्वांटम बिट्स (क्यूबिट्स) से डेटा पढ़ा जाना होता है।

टाटा सिएरा EV की धमाकेदार एंट्री, इलेक्ट्रिक SUV बाजार में नई चुनौती

जून 2026 के आखिर में टाटा मोटर्स ने अपनी बहुप्रतीक्षित टाटा सिएरा EV लॉन्च कर भारतीय इलेक्ट्रिक वाहन बाजार में नई हलचल पैदा कर दी। आकर्षक रेट्रो-फ्यूचरिस्टिक डिजाइन, आधुनिक केबिन, एडवांस्ड कनेक्टिविटी फीचर्स और 500 किलोमीटर से अधिक की संभावित ड्राइविंग रेंज के साथ यह SUV ग्राहकों के बीच चर्चा का केंद्र बन गई। कंपनी ने इसे अपनी EV लाइनअप में कर्व EV और हैरियर EV के बीच रणनीतिक रूप से पेश किया है। विशेषज्ञों का मानना है कि सिएरा EV प्रीमियम इलेक्ट्रिक SUV सेगमेंट में प्रतिस्पर्धा को और तेज करेगी।

नियुक्ति-इस्तीफा

लेफ्टिनेंट जनरल धीरज सेठ,
थल सेना प्रमुख, भारत

लेफ्टिनेंट जनरल धीरज सेठ भारत के नये थल सेना प्रमुख नियुक्त हुए है। उन्होंने 30 जून 2026 को जनरल उपेन्द्र द्विवेदी का स्थान लिया। इससे पहले वे सेना के उप-प्रमुख थे और उत्तरी व पश्चिमी सीमाओं पर कई महत्वपूर्ण सैन्य जिम्मेदारियां संभाल चुके हैं।

पुनीत शर्मा, पूर्व सीएफओ, एक्सिस बैंक

पुनीत शर्मा, जो भारत के निजी क्षेत्र के प्रमुख बैंकों में से एक एक्सिस बैंक के मुख्य वित्तीय अधिकारी थे, इन्होंने 28 जून 2026 को अपने पद से इस्तीफा दे दिया। बैंक के अनुसार उन्होंने अपने पेशेवर करियर के अगले चरण की ओर बढ़ने के लिए यह निर्णय लिया है। हालांकि वे 31 अगस्त 2026 तक ट्रांजिशन के लिए बैंक से जुड़े रहेंगे।

उन्होंने कहा

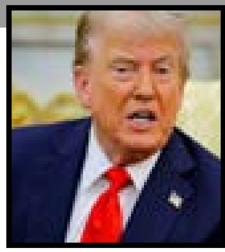

डोनाल्ड ट्रंप
राष्ट्रपति, संयुक्त राज्य अमेरिका

जार्जिया मेलोनी
प्रधानमंत्री, इटली

"मेलोनी जी-7 में बार-बार मेरे साथ फोटो खिंचवाने की गुहार लगा रही थीं, आखिरकार मुझे मानना पड़ा।"

"न मैंने, न इटली ने कभी किसी से भीख मांगी है, ट्रंप का दावा पूरी तरह मनगढ़ंत और अपमानजनक है।"

श्रद्धांजलि

स्वामी विवेकानंद भारत के सबसे पूज्यनीय आध्यात्मिक नेताओं में से एक थे, जिन्होंने वेदांत दर्शन को विश्व पटल पर प्रतिष्ठा दिलाई। उनका जन्म 12 जनवरी 1863 को कोलकाता में नरेंद्रनाथ दत्त के रूप में हुआ था। वे एक विलक्षण बुद्धिजीवी थे जिनके भीतर जिज्ञासु मस्तिष्क और सत्य की खोज की तीव्र लालसा थी। उनकी यह आध्यात्मिक खोज उन्हें उनके गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस के चरणों तक ले गई, जिन्होंने उनके जीवन को पूरी तरह से रूपांतरित कर दिया। गुरु की प्रेरणा से उन्होंने मानवता की सेवा को अपना धर्म बना लिया।

गुरु के महाप्रयाण के बाद विवेकानंद ने सन्यास की दीक्षा ली और भारत भ्रमण पर निकल पड़े। इस यात्रा में उन्होंने देश की गहराई में छिपी दरिद्रता, अज्ञानता और सामाजिक अन्याय को निकट से देखा। इसका उत्तर उन्होंने एक तेजस्वी आह्वान के रूप में दिया—'आध्यात्मिक और राष्ट्रीय पुनर्जागरण'।

स्वामी विवेकानंद
(12/01/1863-04/07/1902)

1893 में शिकागो में आयोजित विश्व धर्म महासभा में जब उन्होंने 'Sisters and Brothers of America' से अपना भाषण आरंभ किया, तो पूरा सभागार तालियों से गूंज उठा। इस भाषण के बाद उन्होंने न केवल भारत को वैश्विक मंच पर गौरव दिलाया, बल्कि हिंदू धर्म की सहिष्णुता, सार्वभौमिक भाईचारे और आत्मबल की भावना को पूरी दुनिया से परिचित कराया।

1897 में उन्होंने 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की, जिसका उद्देश्य आध्यात्मिकता और सामाजिक सेवा को एक सूत्र में पिरोना था। उनका प्रसिद्ध उद्घोष—'उठो, जागो और तब तक मत रुको जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाए'—आज भी करोड़ों लोगों की आत्मा को प्रेरणा देता है। 4 जुलाई 1902 को मात्र 39 वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया, परंतु उनका जीवन और विचार आज भी जीवंत हैं। ●

यूरोपीय साझेदारों से चिढ़े ट्रंप

अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप ने नाटो महासचिव मार्क रुटे की तारीफ करते हुए उन्हें एक महान नेता बताया, लेकिन यूरोपीय साझेदारों पर जमकर भड़ास निकाली। ट्रंप के अनुसार, ईरान युद्ध के दौरान यूरोपीय देशों के रुख ने अमेरिका को शर्मिंदा किया। उन्होंने विशेष रूप से इटली, ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस और स्पेन की आलोचना की, जिन्होंने अमेरिकी सेना को अपने सैन्य अड्डे देने से इनकार कर दिया था। 7-8 जुलाई 2026 को तुर्की के अंकारा में होने वाले नाटो सम्मेलन से पहले इन मतभेदों को सुलझाने के लिए रुटे वॉशिंगटन पहुंचे थे। इस आगामी बैठक में सैन्य खर्च, हथियार उत्पादन और यूक्रेन की मदद पर चर्चा होनी है। 1949 में स्थापित नाटो का मुख्य उद्देश्य सदस्यों की सुरक्षा करना है। इसके संविधान की धारा 5 के तहत, किसी एक सदस्य पर हमला पूरे गठबंधन पर हमला माना जाता है, जिसके जवाब में सभी देश सामूहिक सैन्य कार्रवाई कर सकते हैं। •

कच्चे तेल की कीमतें घटी, युद्ध से पहले के स्तर पर

ईरान युद्ध खत्म करने के लिए अमेरिका और तेहरान के बीच हुए अंतरिम समझौते के बाद कच्चे तेल की कीमतें घटकर युद्ध से पहले के स्तर पर आ गई हैं। 28 फरवरी को युद्ध शुरू होने के बाद पहली बार ब्रेंट क्रूड की कीमत गिरकर 73 डॉलर प्रति बैरल से नीचे पहुंच गई है। इस समझौते के तहत होर्मुज जलडमरूमध्य को दोबारा खोल दिया गया है, जिससे तेल टैंकरों की आवाजाही शुरू हो गई है। साथ ही, अमेरिका ने ईरानी तेल निर्यात पर लगे प्रतिबंधों में आंशिक ढील दी है। अब अंतिम समझौते के लिए दोनों देशों के पास 60 दिनों का समय है। •

फोल्क्सवागन में जा सकती हैं 1,00,000 नौकरियां

जर्मनी की दिग्गज कार निर्माता कंपनी फोल्क्सवागन में साल 2030 तक नौकरियों की भारी कटौती की योजना है। कंपनी ने आधिकारिक तौर पर 50,000 नौकरियां घटाने का एलान किया है, जिसमें से 35,000 कटौती अकेले मुख्य फोल्क्सवागन ब्रैंड में होगी। हालांकि, मीडिया रिपोर्ट्स के मुताबिक यह संख्या 1,00,000 तक पहुंच सकती है और जर्मनी में हनोवर, त्स्विकाउ, एमडेन और ऑडी की नेकारसुल्म फैक्ट्री सहित चार प्लांट बंद हो सकते हैं। कंपनी के सीईओ ओलिवेर ब्लूम ने स्थिति को बेहद चुनौतीपूर्ण बताया। •

अपनी अलग मुद्रा छाप रहा है जर्मनी का एक कस्बा

जर्मनी के बवेरिया प्रांत के किमगाउ इलाके में बड़े शॉपिंग मॉल्स से स्थानीय व्यवसायों को बचाने के लिए 2003 से एक अनोखी मुद्रा 'किमगाउअर' चलाई जा रही है। इसकी शुरुआत एक शिक्षक और छात्रों ने की थी, जिसका उद्देश्य पैसे को स्थानीय बाजार में ही बनाए रखना है। वर्तमान में 1 किमगाउअर की कीमत 1 यूरो के बराबर है। पर्यावरण के अनुकूल यह मुद्रा कार्बन उत्सर्जन घटाने में भी मददगार है। जर्मनी में दूसरी मुद्रा चलाना गैरकानूनी है, लेकिन इसे सिर्फ 4,200 लोग और 300 कारोबारी इस्तेमाल करते हैं। •

शांति समझौते के बावजूद अमेरिका और ईरान फिर आमने-सामने

शांति समझौते के हफ्तेभर के भीतर अमेरिका और ईरान फिर आमने-सामने हैं। 25 जून को होर्मुज जलडमरूमध्य में एक मालवाहक जहाज पर हुए ड्रोन हमले के जवाब में अमेरिकी सेना ने ईरान के मिसाइल, ड्रोन ठिकानों और रडारों पर हमला किया। राष्ट्रपति ट्रंप ने इसे युद्धविराम का उल्लंघन बताया है, जबकि ईरानी सांसद इब्राहिम अजीजी ने इसे नियंत्रण का प्रबंधन बताते हुए कहा कि होर्मुज जलडमरूमध्य पर ईरान का नियंत्रण है। •

चरमराती वैश्विक व्यवस्था एशिया के लिए अवसर

यूक्रेन युद्ध, अंतरराष्ट्रीय नियमों के प्रति ट्रंप की बेरुखी और गाजा संकट के चलते दूसरे विश्व युद्ध के बाद बनी पश्चिमी वैश्विक व्यवस्था चरमरा रही है। जहां यूरोपीय नेता इस बदलाव से चिंतित हैं, वहीं एशियाई जानकार इसे स्वाभाविक मानते हैं। सिंगापुर के पूर्व राजनयिक बिलाहारी कौसिकन के अनुसार, प्रतिस्पर्धा और टकराव ही अंतरराष्ट्रीय संबंधों का स्थायी सच है। विशेषज्ञों का मानना है कि अमेरिका के सुरक्षा कवच के कारण यूरोप एक उदार वैश्विक व्यवस्था का सपना देख सका, जबकि एशिया हमेशा जमीनी हकीकत से जुड़ा रहा। •

दक्षिण अफ्रीका में विदेशियों के खिलाफ बढ़ती घृणा, भाग रहे विदेशी

दक्षिण अफ्रीका में अफ्रीकी विदेशियों के खिलाफ बढ़ती घृणा और हिंसा के कारण हजारों लोग जान बचाकर भाग रहे हैं। उपद्रवियों ने विदेशियों को 30 जून तक देश छोड़ने की धमकी दी थी, जिसके बाद उनकी संपत्तियां लूटी गईं और कई पर हमले हुए। मलावी के अधिकारियों के अनुसार, अब तक 15,000 से अधिक मलावी नागरिक देश छोड़ चुके हैं। इसके अलावा घाना, नाइजीरिया और जिम्बाब्वे के लोग भी लौट रहे हैं। पीड़ितों के मुताबिक, दक्षिण अफ्रीकी पुलिस भी विदेशियों को कैंपों में ले जा रही थी। डरबन के अस्थायी कैंपों में 10 हजार से ज्यादा लोगों की भीड़ जमा थी, जहां भूख-प्यास के कारण लोग बेहोश हो रहे थे। कई वर्षों तक दर्जी और कारपेंटर का काम करने वाले लोग अब खाली हाथ और टूटे मनोबल के साथ अपने वतन लौटने को मजबूर हैं। •

भीषण गर्मी से पेरिस के मुर्दाघरों में जगह कम पड़ी

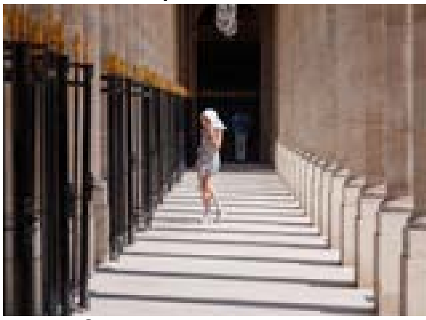

फ्रांस में जून के अंत में पड़ी भीषण गर्मी (तापमान 40 डिग्री सेल्सियस के पार) के कारण हजारों लोगों की मौत हो गई, जिससे पेरिस के मुर्दाघरों में जगह कम पड़ गई है। 24 से 26 जून के बीच रोजाना 1,200 से 1,400 लोगों की जानें गईं, जबकि व्यवस्था सामान्यतः प्रतिदिन 900-1,000 मौतों के लिए ही तैयार थी। शवगृहों के फुल होने से 80 किमी दूर से भी शव पेरिस लाए जा रहे हैं। संकट से निपटने के लिए सिटी हॉल ने 20-20 क्षमता की दो अस्थायी स्टोरेज यूनिट्स शुरू की हैं और अस्पतालों में भी अतिरिक्त जगह बनाई गई है। •

अमेरिका की विदेश नीति पर भारी पड़ रही सैन्य ताकत

राजनीति विज्ञानी मोनिका डफ्फी टोफ्ट और सिडीटा कुशी के शोध के अनुसार, पिछले 250 वर्षों में अमेरिका ने दुनिया भर में 500 से अधिक सैन्य हस्तक्षेप किए हैं। समय के साथ अमेरिकी विदेश नीति में कूटनीति की जगह सैन्य कार्रवाई ने ले ली है। प्रोफेसर कुशी के मुताबिक, 11 सितंबर 2001 (9/11) के आतंकी हमलों के बाद अमेरिका का नजरिया पूरी तरह बदल गया और यह सोच हावी हो गई कि बातचीत के बजाय केवल हिंसा ही एकमात्र रास्ता है। इसके बाद अमेरिकी रक्षा विभाग का बजट तेजी से बढ़ा और विदेश विभाग का बजट घटता चला गया। नतीजा यह हुआ कि अमेरिका हर अंतरराष्ट्रीय समस्या का हल सिर्फ सैन्य हस्तक्षेप में तलाशने लगा। •

‘अभिज्ञान’ ऐप लॉन्च: अब मौके पर ही खुलेगा अपराधियों का कच्चा चिट्ठा

केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह ने नया मोबाइल ऐप ‘अभिज्ञान’ लॉन्च किया है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो द्वारा विकसित यह ऐप पुलिस और जांच एजेंसियों को किसी भी स्थान पर संदिग्धों के फिंगरप्रिंट लेकर उनके आपराधिक रिकॉर्ड की जांच करने की सुविधा देगा। यह ऐप 'नेशनल ऑटोमेटेड फिंगरप्रिंट आइडेंटिफिकेशन सिस्टम' के 1.3 करोड़ से अधिक फिंगरप्रिंट वाले राष्ट्रीय डेटाबेस से सीधे जुड़ा है। टू-स्टेप ऑथेंटिकेशन से सुरक्षित यह ऐप मात्र 35 सेकंड में पहचान स्थापित कर सकता है, जिससे नियमित वाहन जांच के दौरान वांछित अपराधियों को तुरंत पकड़ा जा सकेगा। हालांकि, इस तकनीक पर कानूनी सवाल भी उठ रहे हैं। आपराधिक प्रक्रिया (पहचान) अधिनियम, 2022 के तहत फिंगरप्रिंट अनिवार्य रूप से केवल गिरफ्तार, दोषी या संदिग्ध आचरण वाले व्यक्तियों के ही लिए जा सकते हैं।

पश्चिम बंगाल में एक्टिविस्टों पर पड़े NIA का छापा

राष्ट्रीय जांच एजेंसी (NIA) ने बंगाल में नागरिक अधिकारों के लिए काम करने वाले तीन कार्यकर्ताओं और रिसर्चर्स के ठिकानों पर तलाशी अभियान चलाया। यह कार्रवाई 2022 के रांची के एक मामले (UAPA के तहत) से जुड़ी है, जो माओवादी आंदोलन को पुनर्जीवित करने की कथित कोशिशों से संबंधित है। निशाना बनाए गए लोगों में स्कॉलर झेलम रॉय और 'आरएसएफ' के महासचिव तथागत रॉय चौधरी शामिल हैं। ये कार्यकर्ता बंगाल में 'एसआईआर' प्रक्रिया के तहत मतदाता सूची से मनमाने ढंग से नाम हटाए जाने का विरोध कर रहे थे।

नए FCRA नियम में NGO को देनी होगी कार्यक्षेत्र की जानकारी

केंद्रीय गृह मंत्रालय ने विदेशी अंशदान (विनियमन) संशोधन नियम, 2026 अधिसूचित किए हैं। इन नए नियमों के तहत सभी एफसीआरए पंजीकृत गैर-सरकारी संगठनों के लिए अपने सोशल मीडिया अकाउंट, वेबसाइट, काम के उद्देश्य और भौगोलिक कार्यक्षेत्र का खुलासा करना अनिवार्य कर दिया गया है। साथ ही, 'प्रमुख पदाधिकारी' के दायरे को बढ़ाकर इसमें ट्रस्टियों और प्रबंधकों को भी शामिल किया गया है। नियमों के उल्लंघन या धन के दुरुपयोग पर 30% तक जुर्माना लग सकता है।

सरकार ने समाज कल्याण योजनाओं का किया विस्तार

दिसंबर 2023 में मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री का पद संभालने के बाद से मोहन यादव के परिवार और उनसे जुड़ी रियल एस्टेट कंपनियों द्वारा उज्जैन में बड़े पैमाने पर जमीन खरीदने का मामला सामने आया है।

'इंडियन एक्सप्रेस' की पड़ताल के अनुसार, मुख्यमंत्री के परिवार ने उज्जैन और उसके आसपास करीब 45 करोड़ रुपये घोषित मूल्य की 168 एकड़ (137 भूखंड) ज़मीन खरीदी है। चौंकाने वाली बात यह है कि इस ज़मीन का लगभग 111 एकड़ हिस्सा उन इलाकों में स्थित है जहां राज्य सरकार ने नई सड़क, हाईवे विस्तार और उज्जैन मास्टर प्लान-2035 के तहत भूमि उपयोग बदलने की घोषणाएं की हैं।

'पासपोर्ट नागरिकता का दस्तावेज़ नहीं, सिर्फ यात्रा दस्तावेज़ है'

विदेश मंत्रालय ने पासपोर्ट सेवा दिवस पर एक महत्वपूर्ण बयान में स्पष्ट किया है कि पासपोर्ट केवल एक यात्रा दस्तावेज़ है, नागरिकता का निर्णायक प्रमाण नहीं। यह स्पष्टीकरण तब आया जब यह सवाल उठा कि क्या मतदाता सूची से बाहर किए गए लोग नागरिकता साबित करने के लिए पासपोर्ट का उपयोग कर सकते हैं। अधिकारियों के अनुसार, पासपोर्ट राष्ट्रीयता की पुष्टि ज़रूर करता है, लेकिन इसे नागरिकता का अंतिम दस्तावेज़ नहीं माना जा सकता।

परमाणु ऊर्जा क्षेत्र में अडानी समूह की एंट्री

अडानी समूह ने 'अडानी एटॉमिक एनर्जी' के माध्यम से भारत के परमाणु ऊर्जा क्षेत्र में प्रवेश की घोषणा की है। समूह का लक्ष्य वर्ष 2035 तक 10 गीगावाट (GW) परमाणु ऊर्जा क्षमता स्थापित करना है। सरकार द्वारा 'शांति अधिनियम' (SHANTI Act) के तहत इस क्षेत्र को निजी कंपनियों के लिए खोले जाने के बाद अडानी समूह यह कदम उठाने वाला पहला बड़ा निजी खिलाड़ी बन सकता है। वर्तमान में केवल सरकारी कंपनी NPCIL को ही प्लांट चलाने की अनुमति है। भारत सरकार का लक्ष्य देश की परमाणु क्षमता को बढ़ाकर 100 गीगावाट तक पहुंचाना है। •

इस्लाम अपनाने वाले नहीं मांग सकते पिछड़ा वर्ग का दर्जा: मद्रास हाईकोर्ट

मद्रास हाईकोर्ट की मदुरै पीठ ने एक ऐतिहासिक फैसले में कहा है कि इस्लाम धर्म अपनाने वाला कोई भी व्यक्ति 'पिछड़ा वर्ग (मुस्लिम)' का दर्जा नहीं मांग सकता। इसके साथ ही अदालत ने तमिलनाडु सरकार के 2024 के उस आदेश को रद्द कर दिया, जिसमें कुछ चुनिंदा हिंदू जातियों से धर्मांतरित लोगों को यह लाभ देने की व्यवस्था थी। अदालत ने इस आदेश को असंवैधानिक और इस्लाम के सिद्धांतों के विपरीत बताया। जस्टिस जीआर स्वामीनाथन और जस्टिस पीबी बालाजी की पीठ ने स्पष्ट किया कि हिंदू धर्म से इस्लाम अपनाने के बाद व्यक्ति केवल 'मुस्लिम' रह जाता है, वह किसी जाति या उपजाति का सदस्य नहीं रहता। अदालत ने कहा कि इस्लाम एक बराबरी वाले समाज की वकालत करता है, जहां ईश्वर की नज़र में सब समान हैं। अतः इस्लाम के भीतर कुछ समुदायों को 'पिछड़ा' और कुछ को 'अगड़ा' मानना कुरान की शिक्षाओं के खिलाफ है। •

अमेरिकी हमले में मारे गए भारतीय नाविक का परिवार बेसहारा, इंसाफ की गुहार

ओमान की खाड़ी में 9 जून को व्यापारिक जहाज 'एमटी सेटेबेलो' पर अमेरिकी हमले में मारे गए भारतीय नाविक शिवानंद चौरसिया का परिवार गहरे सदमे में है। अमेरिकी सेना ने ईरान तेल नाकेबंदी के तहत इस जहाज पर हमला किया था, जिसमें तीन भारतीय नाविकों की मौत हुई थी। जहाज प्रबंधन ने अमेरिकी दावे को खारिज करते हुए कहा कि उन्हें कोई चेतावनी नहीं मिली थी। उत्तर प्रदेश के देवरिया के रहने वाले चौरसिया परिवार ने शिवानंद की पढ़ाई के लिए जमीन बेचकर कर्ज लिया था। •

प्यार का झांसा देकर ठगी: म्यामांर के स्कैम सेंटर की दर्दनाक कहानी

केरल के 28 वर्षीय सफीर मोहम्मद को विदेश में नौकरी का झांसा देकर म्यामांर के एक स्कैम सेंटर में बंधक बना लिया गया। वहां मार-पीट और बिजली के झटकों से बचने के लिए सफीर को 'एला' नामक सिंगापुरी महिला की फर्जी ऑनलाइन पहचान अपनानी पड़ी। उसे हर शख्स को सिर्फ चार दिन में प्यार में फंसाने का निर्देश दिया गया था। सफीर रोजाना 100 से ज्यादा लोगों से चैट करता था। मात्र एक महीने में उसने जर्मनी, रूस, तुर्की और अर्जेंटीना सहित 17 देशों के करीब 50,000 लोगों से संपर्क किया। इनमें किसान, सैनिक और इंजीनियर शामिल थे, जिनसे उसने शादी और घर बसाने के झूठे वादे कर बड़ी ठगी को अंजाम दिया। •

श्रीराजेश, संपादक

वैश्विक पटल पर भारतीय रुपये का 'महा-उत्तरायण'

पश्चिम एशिया के महासंकट और डॉलर की तानाशाही के बीच, भारतीय रिजर्व बैंक ने रुपये के अंतर्राष्ट्रीयकरण का शंखनाद कर दिया है। यह कदम केवल मुद्रा का विस्तार नहीं, बल्कि अमेरिकी वित्तीय साम्राज्यवाद के विरुद्ध भारत की संप्रभुता और आर्थिक पुनर्जागरण की वह घोषणा है, जो वैश्विक मंच पर देश को अजेय बनाएगी।

इतिहास के रंगमंच पर जब आर्थिक साम्राज्यवाद की पटकथा लिखी जाती है, तो उसकी स्याही अमेरिकी डॉलर के वर्चस्व से तैयार होती है। द्वितीय विश्व युद्ध के मलबे से उपजी 'ब्रेटन वुड्स' व्यवस्था ने दुनिया को एक ऐसे वित्तीय नव-उपनिवेशवाद की बेड़ियों में जकड़ दिया था, जहां वाशिंगटन की एक धड़कन से विकासशील राष्ट्रों की सांसें थम जाती थीं। इस परिप्रेक्ष्य में, भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर संजय मल्होत्रा का हालिया वक्तव्य केवल एक मौद्रिक नीति का बयान नहीं, बल्कि डॉलर की उस वैश्विक तानाशाही के विरुद्ध एक साहसिक वैचारिक शंखनाद अवश्य है। किंतु, इस शंखनाद के उत्साह में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि किसी मुद्रा की वैश्विक स्वीकार्यता केवल घोषणाओं से नहीं, बल्कि उस अर्थव्यवस्था की संरचनात्मक सुदृढ़ता से तय होती है। क्या भारतीय रुपया वास्तव में डॉलर के उस विराट साम्राज्य को प्रतिस्थापित करने के लिए संस्थागत रूप से तैयार है, या यह केवल एक समयपूर्व भू-राजनीतिक महत्वाकांक्षा है?

इस रणनीतिक महा-परिवर्तन की विभीषिका और महत्ता को समझने के लिए हमें उस 'असमित वित्तीय युद्ध' को देखना होगा, जहां मुद्राएं भू-राजनीतिक संप्रभुता का अस्त्र बन चुकी हैं। जब भी मध्य-पूर्व में मिसाइलें आसमान का सीना चीरती हैं, तो उसका सीधा प्रहार भारत के मध्यमवर्गीय चूल्हों पर होता है। तेल की कीमतों का अनियंत्रित उछाल और डॉलर का कृत्रिम अवमूल्यन भारतीय अर्थव्यवस्था को एक ऐसे 'ब्लैक होल' की ओर धकेलता रहा है, जहां से वापसी का मार्ग ऋण से होकर गुजरता था। रुपये का अंतर्राष्ट्रीयकरण इस 'आर्थिक भस्मासुर' की काट के रूप में प्रस्तुत तो किया जा रहा है, परंतु यह विडंबना ही है कि आज भी भारत अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं के लिए उसी वैश्विक बाजार पर निर्भर है जो डॉलर से संचालित होता है। प्रतिबंधों को दरकिनार कर वैकल्पिक मार्ग खोजना एक अल्पकालिक राहत तो हो सकता है, लेकिन रुपये की तरलता और वैश्विक स्वीकार्यता का अभाव इसे एक दीर्घकालिक और टिकाऊ विकल्प बनने की राह में सबसे बड़ा अवरोधक है।

रूस को स्विफ्ट वित्तीय संदेश प्रणाली से निष्कासित किए जाने के बाद भारत और रूस द्वारा बुना गया वैकल्पिक भुगतान प्रणालियों का ताना-बाना पश्चिमी अहंकार पर एक चोट अवश्य प्रतीत होता है। जब अफ्रीका से लेकर यूरेशिया तक के राष्ट्र भारतीय रुपये में व्यापार करने की उत्सुकता दिखा रहे हैं, तो इसे एक महाशक्ति के उदय के रूप में प्रचारित किया जा रहा है। लेकिन इस कूटनीतिक आवरण के पीछे का आर्थिक यथार्थ अत्यंत धूमिल है। रूस के साथ रुपये में व्यापार की सबसे बड़ी परिणति यह हुई

कि रूसी बैंकों में भारतीय मुद्रा का ऐसा अंबार लग गया जिसका वे उपयोग नहीं कर पा रहे हैं, और अंततः उन्हें भी चीनी युआन या अन्य मुद्राओं का सहारा लेना पड़ा। वैश्विक उदारवाद के खोखले चेहरे को बेनकाब करने के उत्साह में, भारतीय नीति नियंता इस कड़वे सच की उपेक्षा कर रहे हैं कि रुपया अभी भी पूर्ण रूप से परिवर्तनीय मुद्रा नहीं है, जो इसकी वैश्विक महत्वाकांक्षाओं को पंगु बना देता है।

घरेलू स्तर पर बरती गई वित्तीय प्रज्ञा के प्रमाण स्वरूप मुद्रास्फीति को 4% की मर्यादा के भीतर बांधने और मई में इसे 3.93% के स्तर पर लाने के दावों पर पीठ थपथपाई जा सकती है। जनवरी-मार्च तिमाही में 7.8% की सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर निश्चित रूप से एक तकनीकी श्रेष्ठता का समागम दिखती है। परंतु, आर्थिक आंकड़ों की यह चमकीली चादर भारतीय अर्थव्यवस्था के अंतर्विरोधों को ढक नहीं सकती। एक ओर जहां विकास दर के आंकड़े आसमान छू रहे हैं, वहीं दूसरी ओर घरेलू उपभोग में सुस्ती, ग्रामीण संकट और अभूतपूर्व बेरोजगारी की दर इस 'दिग्विजयी नायक' के पैर मिट्टी के होने का संकेत देती है। यदि घरेलू धरातल पर ही आर्थिक समृद्धि का समान वितरण नहीं है, तो समष्टि आर्थिक स्थिरता का यह महल ताश के पत्तों की तरह ढह सकता है।

केंद्रीय बैंक द्वारा क्लियरिंग कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया जैसी संस्थाओं को मजबूत कर खुदरा निवेशकों और सरकारी प्रतिभूतियों के लिए तैयार किया गया बुनियादी ढांचा भविष्य के 'खंडित विश्व' की तैयारी का हिस्सा हो सकता है। परंतु, केवल संस्थागत ढांचे का निर्माण ही पर्याप्त नहीं है जब तक कि नीतियों में निरंतरता और नियामक पारदर्शिता न हो। भारतीय वित्तीय तंत्र पर आज भी नौकरशाही और अत्यधिक नियंत्रण का साया है, जो विदेशी निवेशकों में एक संशय पैदा करता है। संप्रभु मुद्रा की रीढ़ तभी मजबूत होती है जब उसमें वैश्विक बाजार का अटूट विश्वास हो, न कि केवल सरकारी तंत्र का संरक्षण।

काल के भाल पर अंकित ये रेखाएं तभी गौरवमयी बनेंगी जब भारत अपनी तकनीकी और आर्थिक श्रेष्ठता के दावों को यथार्थ के धरातल पर प्रमाणित करेगा। यदि समय रहते वैश्विक वित्तीय संस्थाओं ने इस नए भारत को स्वीकार नहीं किया, तो वे अप्रासंगिक हो सकती हैं, लेकिन यदि भारत ने आत्ममुग्धता के वशीभूत होकर अपनी आंतरिक कमजोरियों को सुधारने में तत्परता नहीं दिखाई, तो रुपये के अंतर्राष्ट्रीयकरण का यह स्वप्न शांति के दो युद्धों के बीच का एक संक्षिप्त भ्रम मात्र बनकर रह जाएगा। आत्मनिर्भरता की गूंज तभी चिरस्थायी होगी जब वह नारों के कोलाहल से मुक्त होकर वास्तविक आर्थिक सुदृढ़ता के धरातल पर उतरेगी।

Ajesh

srirajesh.journalist @srirajesh editor@cultcurrent.com

काबुल की नई कूटनीति

रूस द्वारा तालिबान को औपचारिक मान्यता देना केवल कूटनीतिक पहल नहीं, बल्कि यूरेशिया की बदलती सामरिक राजनीति का महत्वपूर्ण संकेत है। आतंकवाद, क्षेत्रीय स्थिरता और आर्थिक संपर्क के साझा हितों ने दोनों पक्षों को अभूतपूर्व रणनीतिक निकटता की ओर अग्रसर कर दिया है।

राजोली सिद्धार्थ जयप्रकाश
शिवम शेखावत

21 मई को रूस की सुरक्षा परिषद के सचिव सर्गेई शोइगु ने एक बार फिर अफगानिस्तान से जुड़े रूस के सुरक्षा संबंधी चिंताओं को दोहराया। शंघाई सहयोग संगठन (एससीओ) की सुरक्षा बैठक में उन्होंने बताया कि अफगानिस्तान में 20 से अधिक संगठनों के 18,000 से 23,000 तक लड़ाके मौजूद हैं। उन्होंने यह भी कहा कि सीरिया से लड़ाकों की धीरे-धीरे वापसी हो रही है और अफगानिस्तान व उसके पड़ोसी देशों में सिंथेटिक नशीले पदार्थों का उत्पादन और व्यापार बढ़ रहा है। हालाँकि उन्होंने माना कि तालिबान के नेतृत्व वाला इस्लामिक अमीरात इन चुनौतियों, खासकर लड़ाकों की मौजूदगी, से निपटने की कोशिश कर रहा है, लेकिन उन्होंने यह भी कहा कि तालिबान की क्षमता सीमित है। इसलिए इन खतरों से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए क्षेत्रीय सहयोग जरूरी है।

रूस की आतंकवादी संगठनों की सूची से तालिबान का नाम हटाना और जुलाई 2025 में उसे आधिकारिक मान्यता देना यूरेशिया की रणनीतिक स्थिरता में एक महत्वपूर्ण मोड़ था। इससे यह संकेत मिला कि क्षेत्र के देश तालिबान के साथ सहयोग बढ़ाने के लिए अधिक तैयार हैं। हालांकि, इस साझेदारी को मजबूत करते समय मॉस्को को सावधानी बरतनी पड़ी है। इसका कारण बड़े बुनियादी ढांचा परियोजनाओं की घोषणा के साथ-साथ ऊपर बताए गए सुरक्षा जोखिम और अफगानिस्तान-पाकिस्तान संबंधों में बढ़ता तनाव है, जो क्षेत्र के सुरक्षा समीकरण को बदल सकता है।

तालिबान-रूस संबंधों के प्रमुख कारण

मास्को की तालिबान नीति व्यावहारिक और यथार्थवादी सोच पर आधारित है। 2021 में तालिबान के सत्ता में आने ने क्षेत्र से अमेरिका की वापसी का संकेत दिया और रूस ने इस अवसर का जल्दी लाभ उठाते हुए तालिबान के साथ आधिकारिक संपर्क स्थापित कर लिए। काबुल में उसका दूतावास खुला रहा और तालिबान की वापसी के बाद रूस पहला देश बना जिसने काबुल में अपना व्यापारिक प्रतिनिधि कार्यालय खोला। तालिबान द्वारा तेजी से सत्ता पर नियंत्रण स्थापित करना इस नई वास्तविकता को दिखाता था कि क्षेत्र के देशों को अब उसके साथ काम करना ही होगा।

अमेरिका और उसके सहयोगियों की सुरक्षा व्यवस्था खत्म होने के बाद अफगानिस्तान में विभिन्न आतंकवादी संगठनों के फैलने का खतरा बढ़ गया। इससे आशंका पैदा हुई कि आतंकवाद मध्य एशिया तक फैल सकता है और अंततः रूस तक पहुँच सकता है। 2022 में काबुल स्थित रूसी दूतावास पर हुआ बम हमला, जिसकी जिम्मेदारी आईएसकेपी ने ली थी, इस बढ़ते खतरे का पहला बड़ा संकेत था। 2024 में आईएसकेपी ने क्रोकस सिटी हॉल पर हमला किया, जिसमें 140 से अधिक लोगों की मौत हुई। इस हमले ने दिखाया कि यह संगठन सीमा पार हमले करने में सक्षम है। हमलावर मध्य एशिया से थे, जिससे रूस की चिंताएँ और बढ़ गईं। पिछले एक वर्ष में अफगानिस्तान-ताजिकिस्तान सीमा पर सशस्त्र घटनाओं में वृद्धि हुई है और केवल 2025 में ही 17 से अधिक घटनाएं दर्ज की गईं। 26-29 मई रूस के सुरक्षा प्रमुख ने ताजिकिस्तान, उज़्बेकिस्तान, किर्गिस्तान और कजाखस्तान से आईएसकेपी की भर्ती, हमलों की तैयारी और विशेष रूप से उत्तरी अफगानिस्तान में तालिबान शासन को अस्थिर करने की उसकी कोशिशों पर चिंता जताई।

इसके अलावा, 2025 में लगभग 2,742 किलोग्राम नशीले पदार्थ जब्त किए गए। तालिबान द्वारा अफीम की खेती पर प्रतिबंध लगाने

के बाद मेथामफेटामाइन जैसे सिंथेटिक नशीले पदार्थों का उत्पादन और तस्करी बढ़ी है, जिसका केंद्र अब ईरान, अफगानिस्तान और पाकिस्तान बनते जा रहे हैं। 2025 में रूसी सुप्रीम कोर्ट ने तालिबान को आतंकवादी सूची से हटा दिया और उसकी गतिविधियों पर लगा प्रतिबंध निलंबित कर दिया। उसी वर्ष रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन ने तालिबान को आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई में 'सहयोगी' बताया। जुलाई 2025 में रूस तालिबान सरकार को मान्यता देने वाला पहला देश बना और बाद में रूस में अफगानिस्तान के नए राजदूत गुल हसन हसन के परिचय-पत्र भी स्वीकार किए।

यह 'पूर्ण साझेदारी' की दिशा में उठाया गया कदम अफगानिस्तान के प्रति रूस की बदलती नीति को दर्शाता है। हालांकि ऐसी खबरें थीं कि रूस आईएसकेपी के खिलाफ लड़ाई में तालिबान को हथियार देने में रुचि रखता है, लेकिन हाल ही में दोनों पक्षों ने मॉस्को में एक सम्मेलन के दौरान सैन्य-तकनीकी समझौते पर हस्ताक्षर किए। यह क्षेत्रीय सुरक्षा चुनौतियों के फैलाव को रोकने की साझा प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

फरवरी 2026 से पाकिस्तान और अफगानिस्तान के बीच गंभीर तनाव चल रहा है, जिसमें दोनों देशों ने एक-दूसरे की सैन्य और सीमा संबंधी संरचनाओं पर हमले किए हैं। यह विवाद मॉस्को के लिए दोधारी तलवार की तरह है। एक ओर यह क्षेत्रीय शक्ति संतुलन को प्रभावित करता है, वहीं दूसरी ओर यदि तालिबान टीटीपी पर प्रतिबंध लगाकर पाकिस्तान से अपने मतभेद सुलझा लेता है, तो तालिबान के भीतर और विभाजन हो सकता है तथा एक 'नया तालिबान' उभर सकता है। इसके अलावा, ऐसी स्थिति में अफगान और पाकिस्तानी लड़ाकों के अफगानिस्तान स्थित इस्लामिक स्टेट शाखा में शामिल होने की संभावना भी बढ़ सकती है।

इस्लामाबाद द्वारा सैन्य हमलों और प्रतिबंधों जैसे दबावपूर्ण उपायों के बीच रूस की प्राथमिकता संघर्ष को समाप्त करना है। उसने दोनों पक्षों के बीच मध्यस्थता की पेशकश भी की है, लेकिन उसका प्रभाव सीमित है। डूरंड रेखा पर लगातार बनी अस्थिरता मध्य एशिया, अफगानिस्तान और पाकिस्तान को जोड़कर हिंद महासागर तक पहुँचाने वाली संपर्क और परिवहन परियोजनाओं के लिए उत्साह को कम कर रही है।

तालिबान की रणनीति

2026 में तालिबान का इस्लामिक अमीरात सत्ता में अपने दस वर्ष पूरे करने की दिशा में आधा रास्ता तय कर लेगा। पिछले पांच वर्षों में रूस ही ऐसा एकमात्र देश रहा है जिसने तालिबान सरकार को कानूनी और आधिकारिक मान्यता दी है। हालांकि अभी व्यापक अंतरराष्ट्रीय मान्यता नहीं मिली है, फिर भी भारत, चीन, मध्य

एशियाई गणराज्य और ईरान सहित कई क्षेत्रीय देशों ने तालिबान के साथ संपर्क बनाए हैं और व्यावहारिक सहयोग बढ़ाया है।

तालिबान के साथ जुड़ाव के पीछे मुख्य कारण एक ओर अफगानिस्तान में सक्रिय आतंकवादी समूहों को लेकर चिंताएँ हैं और दूसरी ओर उन्हें नियंत्रित करने की तालिबान की क्षमता तथा इच्छा को लेकर संदेह भी है। अमीरात अपनी विदेश नीति में संतुलित और आर्थिक विकास पर केंद्रित दृष्टिकोण को महत्व देता है। वह व्यापार, परिवहन और बुनियादी ढाँचे के क्षेत्रों में व्यावहारिक सहयोग बढ़ाने पर जोर देता है और खुद को क्षेत्रीय संपर्क को बढ़ावा देने वाले एक महत्वपूर्ण भागीदार के रूप में प्रस्तुत करता है। दूसरी ओर, रूस क्षेत्रीय सुरक्षा और आर्थिक विकास से जुड़े अपने लक्ष्यों को हासिल करने के लिए इस संबंध को मजबूत कर रहा है। ऐसे में रूस का समर्थन तालिबान की वैधता और अंतरराष्ट्रीय स्वीकार्यता को और अधिक मजबूती देता है।

बाजार की तलाश में रूस

रूस के लिए तालिबान के साथ जुड़ाव का कारण केवल सुरक्षा चुनौतियाँ नहीं हैं। उसकी प्राथमिकता अफगानिस्तान को यूरेशियाई

आपूर्ति श्रृंखलाओं से जोड़ना और क्षेत्रीय संपर्क को मजबूत करना भी है। इसके लिए एक स्थिर अफगानिस्तान बेहद जरूरी माना जाता है। इसी कारण रूस ने क्षेत्रीय देशों से तालिबान सरकार को औपचारिक मान्यता देने की अपील की है। क्षेत्रीय रणनीतिक स्थिरता आज भी शंघाई सहयोग संगठन (एससीओ) और मॉस्को फॉर्मेट जैसी व्यवस्थाओं में चर्चा का प्रमुख विषय बनी हुई है।

नवंबर 2025 में अफगानिस्तान के प्रतिनिधि गुल हसन हसन ने एससीओ में रूस के प्रतिनिधि से मुलाकात की। इस दौरान संगठन में अफगानिस्तान को पर्यवेक्षक (ऑब्जर्वर) का दर्जा देने की संभावना पर चर्चा हुई। पिछले वर्ष आयोजित रूस-अफगानिस्तान व्यापार मंच के दौरान व्यापार, परिवहन और ऊर्जा खोज के क्षेत्रों में पांच समझौता ज्ञापनों पर हस्ताक्षर हुए। इससे इस्लामिक अमीरात के साथ बढ़ते सहयोग की इच्छा स्पष्ट हुई। वर्तमान में दोनों देशों के बीच व्यापार लगभग 30 से 40 करोड़ अमेरिकी डॉलर के बीच है। अप्रैल और मई 2026 के बीच दोनों पक्षों के प्रतिनिधिमंडलों ने मंत्री, राजदूत और व्यापारिक स्तर पर कई बैठकें कीं। बैंकिंग और आर्थिक सहयोग बढ़ाने को लेकर भी बातचीत जारी है।

अफगानिस्तान के साथ रूस का अधिकांश आर्थिक सहयोग तातारस्तान के माध्यम से आगे बढ़ाया गया है। 2025 के पहले ग्यारह महीनों में तातारस्तान और अफगानिस्तान के बीच व्यापार 5.1 करोड़ अमेरिकी डॉलर तक पहुँच गया, जो दोनों देशों के कुल व्यापार का लगभग दस प्रतिशत था। तातारस्तान के निवेशकों ने अफगानिस्तान में निवेश की रुचि दिखाई है, जबकि रूसी वाणिज्य मंडल कृषि, उर्वरक और तेल उत्पादन क्षेत्रों में सहयोग के अवसर तलाश रहा है।

उज्बेकिस्तान-अफगानिस्तान-पाकिस्तान रेलवे परियोजना, तुर्गुंडी-हेरात-स्पिन बोल्दाक रेलवे नेटवर्क, खाफ-हेरात रेलवे नेटवर्क और वाखान कॉरिडोर राजमार्ग जैसी परियोजनाएँ मध्य एशियाई देशों को समुद्री व्यापार के लिए ईरानी बंदरगाहों पर निर्भरता कम करने का विकल्प प्रदान करती हैं। चीन की मेस ऐनाक खदान परियोजना में धीमी प्रगति को लेकर बढ़ती निराशा के बीच अमीरात अपने निवेश स्रोतों में विविधता लाने की कोशिश कर रहा है। इसके साथ ही जल हस्तांतरण परियोजनाओं में भी रूसी निवेश की चर्चा चल रही है।

आगे की राह

तालिबान की आधिकारिक नीति यह मानने से इनकार करती है कि अफगानिस्तान में कोई आतंकवादी संगठन मौजूद है। अमीरात के नेता लगातार यह दावा करते हैं कि उन्होंने आईएसकेपी (आईएसकेपी) की गतिविधियों को लगभग खत्म कर दिया है और उनके अनुसार इस दबाव के कारण यह संगठन पड़ोसी पाकिस्तान में फिर से संगठित होने को मजबूर हुआ है।

हालांकि आईएसकेपी ने पाकिस्तान के खैबर पख्तूनख्वा और बलूचिस्तान प्रांतों में अपनी मौजूदगी बढ़ाई है, लेकिन वह अब भी अफगानिस्तान के भीतर सक्रिय है। इसी वर्ष जनवरी में काबुल के एक चीनी रेस्तरां पर हुआ हमला इसका स्पष्ट उदाहरण है। बदलते क्षेत्रीय सुरक्षा माहौल के कारण तालिबान के प्रति रूस का दृष्टिकोण भी बदला है, जिसके चलते पूरे यूरेशिया में उसकी रणनीति का पुनर्मूल्यांकन हुआ है।

आतंकवाद के मध्य एशिया और रूस तक फैलने की आशंका ने सभी क्षेत्रीय देशों के लिए एक स्थिर अफगानिस्तान को महत्वपूर्ण बना दिया है। मॉस्को के हालिया कदम भी इसी सोच को दर्शाते हैं। आगे चलकर दोनों देशों के बीच आर्थिक सहयोग जारी रहेगा, लेकिन इसकी गति सीमित और संतुलित रहने की संभावना है। वहीं, दोनों के संबंधों का मुख्य केंद्र आतंकवाद-रोधी प्रयासों और सुरक्षा सहयोग पर रहेगा, क्योंकि व्यापक क्षेत्रीय सुरक्षा स्थिति अभी भी दोनों देशों की प्राथमिक चिंता बनी हुई है।

राजोली सिद्धार्थ जयप्रकाश एवं शिवम शेखावत ऑब्ज़र्वर रिसर्च फ़ाउंडेशन में जूनियर फ़ेलो हैं।

आधी आबादी अधूरी राजनीति

बांग्लादेश में महिलाओं ने प्रधानमंत्री पद से लेकर उद्योग और जनआंदोलनों तक अपनी निर्णायक उपस्थिति दर्ज कराई है, फिर भी सत्ता के वास्तविक केंद्रों में उनकी भागीदारी नगण्य बनी हुई है। यह विरोधाभास लोकतंत्र की सबसे गहरी संरचनात्मक विफलताओं में से एक को उजागर करता है।

बांग्लादेश के लोकतंत्र के सफर में एक अजीब उलझन दिखता है। देश के बड़े नेतृत्व में महिलाओं के आगे रहने, भारी संख्या में महिला वोटरों के निकलने और कपड़ों के कारोबार (रेडीमेड गारमेंट सेक्टर) में उनकी बड़ी आर्थिक भागीदारी के बावजूद, असली राजनीति में उनका दखल बहुत कम है। यह लेख दिखाता है कि कैसे मुख्य राजनीतिक दलों- खासकर अवामी लीग (एएल) और बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी (बीएनपी)- की अंदरूनी कमियों और समाज के पुराने तौर-तरीकों ने दोनों सरकारों के राज में इस भेदभाव को बनाए रखा। यह लेख मांग करता है कि राजनीति में भागीदारी का एक ऐसा बेहतर तरीका अपनाया जाए, जो सिर्फ दिखावे के लिए नहीं बल्कि बांग्लादेश के राजनीतिक संगठनों में महिलाओं को उनका असली हक और प्रभाव दिला सके।

आरक्षण के बावजूद क्यों नहीं बदल रही तस्वीर?

बांग्लादेश की राष्ट्रीय संसद (जातीय संसद) में कुल 350 सीटें हैं, जिनमें से 300 सीटों पर सीधे चुनाव होते हैं। बाकी बची 50 सीटें 'महिला सांसदों के लिए आरक्षित' (आरएसडब्ल्यूपी) होती हैं, जो पार्टियों को चुनाव में मिले वोटों के अनुपात में दी जाती हैं। पुरुषों के दबदबे वाली पार्टियों, पैसों की कमी और समाज में महिलाओं की भूमिका को लेकर पुरानी सोच ने मिलकर महिलाओं को सीधे चुनाव लड़कर संसद में पहुंचने से रोका है।

महिला उम्मीदवारों की चुनाव में कम भागीदारी का यह तरीका हाल ही के फरवरी 2026 के आम चुनावों में भी दिखा, जहाँ केवल सात महिला उम्मीदवार सीधे चुनाव जीतकर सांसद (एमपी) बनीं, और नई बनी 50 सदस्यों की कैबिनेट में सिर्फ तीन महिलाओं को जगह मिली। यहाँ तक कि फिलहाल महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के प्रमुख भी एक पुरुष मंत्री (एजेडएम जाहिद हुसैन) हैं, जो दिखाता है कि बड़े फैसले लेने वाले पदों पर महिलाओं की संख्या कितनी सीमित है।

बांग्लादेश की राजनीति की दो बड़ी नेता, शेख हसीना और खालिदा जिया, ने 1991 में दूसरे संसदीय गणतंत्र की स्थापना के बाद से मिलकर लगभग 31 सालों तक प्रधानमंत्री के रूप में देश संभाला। फिर भी, इससे पुरुषों के मुकाबले संसद की कार्यवाहियों में महिलाओं की हिस्सेदारी नहीं बढ़ पाई। साल 1973 से आरक्षित सीटों (आरएसडब्ल्यूपी) के नियम के जरिए बांग्लादेश की राष्ट्रीय संसद में महिलाओं की संख्या धीरे-धीरे बढ़ी है। शुरुआत में, 1972 के संविधान में महिलाओं के लिए 10 साल के लिए 15 सीटें आरक्षित की गई थीं, जिन्हें 2011 में 15वें संवैधानिक संशोधन द्वारा बढ़ाकर 50 कर दिया गया। जब 1996 में शेख हसीना के नेतृत्व वाली अवामी लीग सत्ता में आई, तब सामान्य सीटों पर महिलाओं की संख्या 300 में से केवल 8 थी।

अगर इसमें 30 आरक्षित सीटों को भी जोड़ लिया जाए, तो संसद में महिलाओं की कुल हिस्सेदारी केवल 11.5 प्रतिशत थी। साल 2009 से 2024 तक हसीना के मजबूत शासन के दौरान, महिला सांसदों (और आरक्षित सीटों) की औसत हिस्सेदारी बढ़कर 20.1 प्रतिशत हो गई, जिसमें 2008 में 21, 2014 में 19 और 2019 में 22 महिला उम्मीदवार चुनी गईं। हालांकि, 2024 के विवादित आम चुनावों में रिकॉर्ड तोड़ संख्या में महिला उम्मीदवारों (94) ने चुनाव लड़ा, लेकिन शेख हसीना और अवामी लीग को सत्ता से हटाए जाने से ठीक पहले चुनी गई महिला सांसदों की संख्या घटकर केवल 12 रह गई।

जुलाई की क्रांति को महिलाओं के नेतृत्व वाले विरोध प्रदर्शन के रूप में एक ऐतिहासिक पल माना गया, क्योंकि इस आंदोलन में महिलाओं ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था। लेकिन जब आंदोलन शांत हुआ, तो राजनीतिक फैसले लेने के मामलों में महिला प्रदर्शनकारियों और नेताओं को धीरे-धीरे किनारे कर दिया गया। वैचारिक मतभेदों के कारण जब आंदोलन अलग-अलग गुटों में बंट गया, तो महिला प्रदर्शनकारी (खासकर छात्राएं) पीछे हट गईं और पुरुष नेतृत्व वाले पदों पर आगे आ गए।

अनसूइया बसु रे चौधरी

महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को केवल दिखावे के तौर पर इस्तेमाल करने का यह चलन तब

भी जारी रहा जब तारिक रहमान के नेतृत्व वाली बीएनपी (बीएनपी) पार्टी ने बांग्लादेश में सरकार बनाई। फिलहाल संसद में केवल सात चुनी हुई महिला सांसद हैं, जो 1991 में खालिदा जिया के पहले कार्यकाल (पांच चुनी हुई महिला सांसद) के मुकाबले बेहद मामूली सुधार है, लेकिन 2026 के ये आंकड़े उनके दूसरे कार्यकाल (साल 2001) जितने ही अटक कर रह गए हैं।

बांग्लादेश में तारिक रहमान के नेतृत्व वाली बीएनपी (बीएनपी) पार्टी की सरकार बनने के बाद भी महिलाओं को केवल दिखावे के लिए राजनीति में रखने का चलन जारी रहा। वर्तमान में, संसद में केवल सात चुनी हुई महिला सांसद हैं, जो 1991 में खालिदा जिया के पहले कार्यकाल के मुकाबले एक बहुत मामूली सुधार है, 2026 के आम चुनाव में अब तक की सबसे कम महिला उम्मीदवार (78) देखी गईं, जो चुनाव लड़ रहे कुल 1,981 उम्मीदवारों का केवल 3.93 प्रतिशत है। जमात-ए-इस्लामी, इस्लामी आंदोलन बांग्लादेश, लिबरल डेमोक्रेटिक पार्टी (एलडीपी), जनता दल और बांग्लादेश नेशनलिस्ट फ्रंट सहित 30 से अधिक राजनीतिक दलों ने इस चुनाव में एक भी महिला उम्मीदवार को टिकट नहीं दिया। इसके अलावा, इन 78 महिला उम्मीदवारों और 7 चुनी हुई महिला सांसदों में से एक बड़ी संख्या ऐसी महिलाओं की है, जिनके पारिवारिक या वैवाहिक रिश्ते बड़े और प्रभावशाली राजनेताओं के साथ हैं, जिससे जमीनी स्तर पर नई महिला नेताओं के आगे बढ़ने के लिए बहुत कम जगह बचती है।

कपड़ा मजदूरों का क्या

बांग्लादेश की राजनीति में महिलाओं की कम भागीदारी और संसद में अमीर घराने की महिलाओं के पारिवारिक दबदबे ने मिलकर गरीब और कामकाजी वर्ग की महिलाओं को सबसे ज्यादा किनारे कर दिया है। बांग्लादेश दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा रेडीमेड कपड़ा (आरएमजी) निर्यातक देश है, जिसने साल 2022-23 में 47 अरब अमेरिकी डॉलर की कमाई की, जो देश की कुल निर्यात कमाई का 82 प्रतिशत है। साल 2022 तक इस उद्योग के लगभग 40 लाख मजदूरों में 80 प्रतिशत से ज्यादा महिलाएं थीं, जो कपड़ा क्षेत्र को महिलाओं को औपचारिक रोजगार देने वाला देश का सबसे बड़ा जरिया बनाता है। इसके बावजूद, मजदूर अक्सर कहते हैं कि उन्हें केवल 'काम निकालने की वस्तु' समझा जाता है और सिर्फ काम करने वाली मशीन मान लिया जाता है।

जुलाई के आंदोलन के दौरान, महिला कपड़ा मजदूर भी ज्यादा वेतन, काम के बेहतर माहौल और राजनीतिक फैसलों में अपनी जगह की मांग को लेकर छात्र प्रदर्शनकारियों के साथ शामिल हो गईं। इसके तुरंत बाद, पूर्व सत्ताधारी दल के सदस्यों से जुड़ी फैक्ट्रियों के बंद होने से कई मजदूर बेरोजगार हो गए और उन्हें सैलरी भी नहीं मिली। मजदूरों की एक मुख्य मांग बढ़ती महंगाई से निपटने के लिए वेतन में 15 प्रतिशत की बढ़ोतरी की थी, जो आंदोलन के भेदभाव-विरोधी नारे से प्रेरित थी।

महमूदुल हसन

जब बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी (बीएनपी) के अध्यक्ष तारिक रहमान का विमान अपनी पहली महत्वपूर्ण विदेश यात्रा के लिए कुआलालंपुर और बीजिंग में उतरा, तो उसकी गूंज केवल इन दोनों राजधानियों तक सीमित नहीं रही। नई दिल्ली के कूटनीतिक गलियारों में भी इसकी प्रतिध्वनि स्पष्ट रूप से सुनाई दी। दशकों से बांग्लादेश की विदेश नीति का एक अलिखित नियम रहा था कि किसी नई सरकार की पहली क्षेत्रीय यात्रा लगभग निश्चित रूप से भारत से शुरू होती थी। ऐसे में इस बार यात्रा की दिशा में आया परिवर्तन केवल मार्ग बदलने की घटना नहीं, बल्कि ढाका की रणनीतिक सोच में एक सुनियोजित परिवर्तन का संकेत था।

जैसी अपेक्षा थी, अंतरराष्ट्रीय मीडिया के एक वर्ग ने तत्काल निष्कर्ष निकाल लिया कि भारत और बांग्लादेश के संबंधों में ठंडक आ गई है। कुछ विश्लेषकों ने इसे चीन की ओर बांग्लादेश के निर्णायक झुकाव के रूप में देखा। किंतु वास्तविकता इन सरल निष्कर्षों से कहीं अधिक जटिल है। बांग्लादेश की हालिया कूटनीतिक सक्रियता भारत को अचानक अस्वीकार करने का प्रयास नहीं है, बल्कि अपने अंतरराष्ट्रीय संबंधों में विविधता लाने, आर्थिक अवसरों का अधिकतम लाभ उठाने और तेजी से ध्रुवीकृत हो रहे क्षेत्रीय परिवेश में अपनी रणनीतिक स्वायत्तता को सुरक्षित रखने की एक परिपक्व और सुविचारित नीति का हिस्सा है।

अंतरराष्ट्रीय संबंधों में प्रतीकात्मक संकेतों का महत्व अत्यंत गहरा होता है। भारत और बांग्लादेश के संबंधों की नींव 1971

ढाका की नई दिशा

के मुक्ति संग्राम से लेकर सांस्कृतिक, संस्थागत और सुरक्षा सहयोग तक फैली हुई है। किंतु यही निकटता समय-समय पर बांग्लादेश के भीतर असमान निर्भरता को लेकर चिंताओं को भी जन्म देती रही है। अगस्त 2024 के बाद बांग्लादेश की घरेलू राजनीति में आए बदलावों ने विदेश नीति के प्रति जनता की अपेक्षाओं को भी नया स्वर दिया है। अब देश के भीतर यह मांग पहले से कहीं अधिक स्पष्ट है कि विदेश नीति किसी एक बाहरी शक्ति के प्रति भावनात्मक निष्ठा पर नहीं, बल्कि परस्पर राष्ट्रीय हितों पर आधारित हो। बीजिंग और कुआलालंपुर की ओर ढाका का बढ़ता कूटनीतिक विस्तार इसी बदलती जन-राजनीतिक सोच का प्रत्यक्ष परिणाम है।

बांग्लादेश का चीन की ओर झुकाव वैचारिक आग्रह से अधिक आर्थिक आवश्यकता का परिणाम है। पिछले एक दशक में चीन बांग्लादेश के आधारभूत ढांचे के विकास का सबसे बड़ा साझेदार बनकर उभरा है। विशाल अवसंरचना परियोजनाएं, परिवहन गलियारे, औद्योगिक क्षेत्र और ऊर्जा ग्रिड जैसी योजनाएं ऐसे निवेश और तकनीकी गति की मांग करती हैं, जिसे बीजिंग अपेक्षाकृत कम राजनीतिक शर्तों के साथ उपलब्ध कराता है। ऐसे समय में, जब वैश्विक अर्थव्यवस्था अनिश्चितताओं से घिरी हुई है और बांग्लादेश को अपने लाखों युवाओं के लिए रोजगार सृजित करना है, तब चीनी निवेश की निरंतरता किसी भी सरकार के लिए राष्ट्रीय हित का अनिवार्य विषय बन जाती है।

उधर, मलेशिया के साथ संबंधों का स्वरूप कुछ अलग है। यहां प्राथमिकता मानव संसाधन और श्रम सहयोग को दी जा रही है। बांग्लादेश आज भी मलेशिया के लिए श्रमिक उपलब्ध कराने वाले प्रमुख देशों में शामिल है और प्रवासी बांग्लादेशियों द्वारा भेजी जाने वाली विदेशी मुद्रा उसकी अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण आधार बनी हुई है। ऐसे में कुआलालंपुर के साथ संबंधों को मजबूत करने का अर्थ केवल श्रम कोटा बढ़ाना नहीं, बल्कि सुरक्षित प्रवासन, नए रोजगार मार्ग और विनिर्माण क्षेत्र में सहयोग के अवसरों का विस्तार भी है। इस दृष्टि से देखें तो यह भारत को कूटनीतिक रूप से पराजित करने की कोई रणनीति नहीं, बल्कि आर्थिक चुनौतियों का व्यावहारिक समाधान खोजने वाली आर्थिक कूटनीति का उदाहरण है।

भारत और बांग्लादेश के संबंधों को लेकर दक्षिण एशिया की भू-राजनीति में अक्सर धारणाएं ही वास्तविकता का रूप ले लेती हैं। यही कारण है कि शीर्ष स्तर की पहली विदेश यात्राओं में भारत की अनुपस्थिति ने नई दिल्ली में स्वाभाविक रूप से चिंताएं पैदा कीं। पिछले कुछ वर्षों में सीमा पर होने वाली नागरिक मौतें, राजनीतिक वक्तव्यों में बढ़ती कटुता और विशेष रूप से तीस्ता नदी जल-बंटवारे जैसे लंबे समय से लंबित मुद्दों ने दोनों देशों के बीच विश्वास की कमी को और गहरा किया है।

फिर भी यह निष्कर्ष निकालना कि ढाका और नई दिल्ली किसी स्थायी कूटनीतिक टकराव की ओर बढ़ चुके हैं, वस्तुस्थिति का सही आकलन नहीं होगा। भूगोल स्वयं ऐसी किसी संभावना पर स्वाभाविक अंकुश लगाता है। लगभग 4,096 किलोमीटर लंबी साझा सीमा केवल एक राजनीतिक रेखा नहीं, बल्कि नदियों, सड़कों, रेल संपर्क, ऊर्जा आपूर्ति और व्यापारिक मार्गों का एक जटिल तंत्र भी है। इस सीमा पर पारस्परिक सुरक्षा सहयोग दोनों देशों की स्थिरता और

अंतरिम सरकार ने केवल 9 प्रतिशत की बढ़ोतरी को मंजूरी दी, इसके बाद पुलिस और सुरक्षाबलों के साथ हुई झड़पों ने इस बात को और पक्का कर दिया कि मजदूरों की आवाज को आज भी दबाया जा रहा है।

यह बेदखली साफ दिखाती है कि कैसे महिला होना और साथ ही गरीब वर्ग से होना, दोनों मिलकर किसी को राजनीति से दूर कर देते हैं। कामकाजी महिलाओं के सामने कई रुकावटें होती हैं, जैसे घर के बिना वेतन वाले काम संभालना, समाज और पैसों का कम सहारा मिलना। नतीजा यह है कि महिलाओं का प्रतिनिधित्व आज भी केवल अमीर और रसूखदार परिवारों तक ही सीमित है। बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी (बीएनपी) और अवामी लीग दोनों ने इस ढर्रे को एक नियम बना दिया है, जिससे यह तय हो गया है कि महिलाओं की राजनीतिक तरक्की जमीनी स्तर के नेतृत्व के बजाय पुरुषों के दबदबे वाली पार्टियों के प्रति वफादारी पर ही निर्भर रहे।

ढांचागत चुनौतियां

बांग्लादेश के चुनावी माहौल में महिलाओं की यह भारी कमी 'रिप्रेजेंटेशन ऑफ द पीपल ऑर्डर' (आरपीओ) के नियमों के बिल्कुल उलट है, जिसके तहत साल 2030 तक राजनीतिक दलों की समितियों में 33 प्रतिशत महिला प्रतिनिधित्व का लक्ष्य रखा गया है। इसके विपरीत, वर्तमान में यह आंकड़ा केवल 2.33 प्रतिशत पर अटका हुआ है। जुलाई क्रांति की भेदभाव-विरोधी भावना के बाद भी, 2026 के आम चुनावों के नतीजे यह बताते हैं कि अधिक महिला उम्मीदवारों को आगे लाने के लिए तुरंत और विशेष रूप से जेंडर-संवेदनशील (महिलाओं के अनुकूल) प्रयास करने की सख्त जरूरत है।

यह जिम्मेदारी सबसे पहले राजनीतिक दलों से शुरू होती है, राजनीतिक दल उम्मीदवारों के चयन में पुरुष-प्रधान सोच को चुनौती देकर और पारदर्शी व योग्यता के आधार पर टिकट बांटकर एक ऐसा माहौल बना सकते हैं जहाँ सबको मौका मिले। ऐसे कदमों से आगे बढ़ने की इच्छा रखने वाली महिला नेता राजनीतिक अवसरों को बेहतर ढंग से समझ सकेंगी, उनके लिए तैयारी कर सकेंगी और उन तक पहुँच पाएंगी। बड़े स्तर पर देखा जाए तो, एक ऐसा समावेशी और निष्पक्ष राजनीतिक माहौल तैयार करने के लिए शिक्षा के अंतर और सामाजिक-आर्थिक असमानताओं को दूर करना भी उतना ही जरूरी है, जो बांग्लादेश में अलग-अलग वर्ग और सामाजिक पृष्ठभूमि की महिलाओं के अनुभवों को सही मायने में सम्मान दे सके।

अनसूइया बसु रे चौधरी, ऑब्ज़र्वर रिसर्च फ़ाउंडेशन में 'नेबरहुड इनिशिएटिव' के साथ सीनियर फ़ेलो हैं।

क्षेत्रीय शांति के लिए अनिवार्य है।

बांग्लादेश के सामने सबसे बड़ी कूटनीतिक चुनौती इसी संतुलन को बनाए रखने की है। उसे यह सुनिश्चित करना होगा कि भारत और चीन के बीच बढ़ती रणनीतिक प्रतिस्पर्धा में वह किसी एक पक्ष के प्रभाव-क्षेत्र में सीमित होकर न रह जाए। अंतरराष्ट्रीय राजनीति में मध्यम शक्तियां अपनी संप्रभुता की रक्षा प्रायः बहु-संरेखीय विदेश नीति के माध्यम से करती हैं। इसका अर्थ है—एक साथ वाशिंगटन, बीजिंग, नई दिल्ली और टोक्यो जैसे प्रमुख शक्ति-केंद्रों के साथ रचनात्मक संबंध बनाए रखना, बिना किसी एक धुरी का हिस्सा बने।

उधर, भारत के समक्ष भी एक महत्वपूर्ण रणनीतिक विकल्प उपस्थित है। यदि नई दिल्ली ढाका और बीजिंग के बीच होने वाले प्रत्येक आर्थिक सहयोग को केवल राष्ट्रीय सुरक्षा के कठोर दृष्टिकोण से देखेगी, तो वह बांग्लादेश की स्वाभाविक आर्थिक आकांक्षाओं और रणनीतिक स्वायत्तता की इच्छा को पर्याप्त रूप से समझ नहीं पाएगी। बांग्लादेश का आर्थिक विविधीकरण उसकी विकास-यात्रा का स्वाभाविक हिस्सा है, और उसे केवल भू-राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के चश्मे से देखना दीर्घकालिक दृष्टि से उपयोगी नहीं होगा।

वास्तव में, एक स्थिर, समृद्ध और आत्मनिर्भर बांग्लादेश, जो दक्षिण एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया के बीच सेतु की भूमिका निभा सके, क्षेत्रीय सुरक्षा और आर्थिक सहयोग के लिए कहीं अधिक मूल्यवान है, बजाय ऐसे पड़ोसी के जिसे लगातार संदेह और प्रतिस्पर्धा की दृष्टि से देखा जाए।

दक्षिण एशिया अब तीव्र भू-राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के एक नए दौर में प्रवेश कर चुका है। इस परिवर्तित परिदृश्य में बांग्लादेश की सफलता इस बात से निर्धारित नहीं होगी कि वह भारत या चीन में से किसे चुनता है, बल्कि इस बात से होगी कि वह अपनी कूटनीतिक लचीलापन किस सीमा तक बनाए रखता है, अपनी राष्ट्रीय संप्रभुता की कितनी दृढ़ता से रक्षा करता है और अपनी भौगोलिक स्थिति को आर्थिक अवसरों में किस प्रकार रूपांतरित करता है।

कुआलालंपुर और बीजिंग की हालिया यात्राएं इसी परिवर्तन की स्पष्ट अभिव्यक्ति हैं। वे संकेत देती हैं कि बांग्लादेश अब उपमहाद्वीप की शतरंज पर केवल परिस्थितियों से संचालित होने वाला निष्क्रिय खिलाड़ी नहीं रहना चाहता। इसके विपरीत, वह एक ऐसे व्यवहारवादी राष्ट्र के रूप में स्वयं को स्थापित करना चाहता है, जो अपने राष्ट्रीय हितों के अनुरूप स्वतंत्र कूटनीतिक मार्ग चुनने और अपनी विदेश नीति की दिशा स्वयं निर्धारित करने का इच्छुक है।

महमूदुल हसन ढाका के जहांगीरनगर विश्वविद्यालय में अंतर्राष्ट्रीय संबंध (इंटरनेशनल रिलेशंस) के अंतिम वर्ष के छात्र हैं।

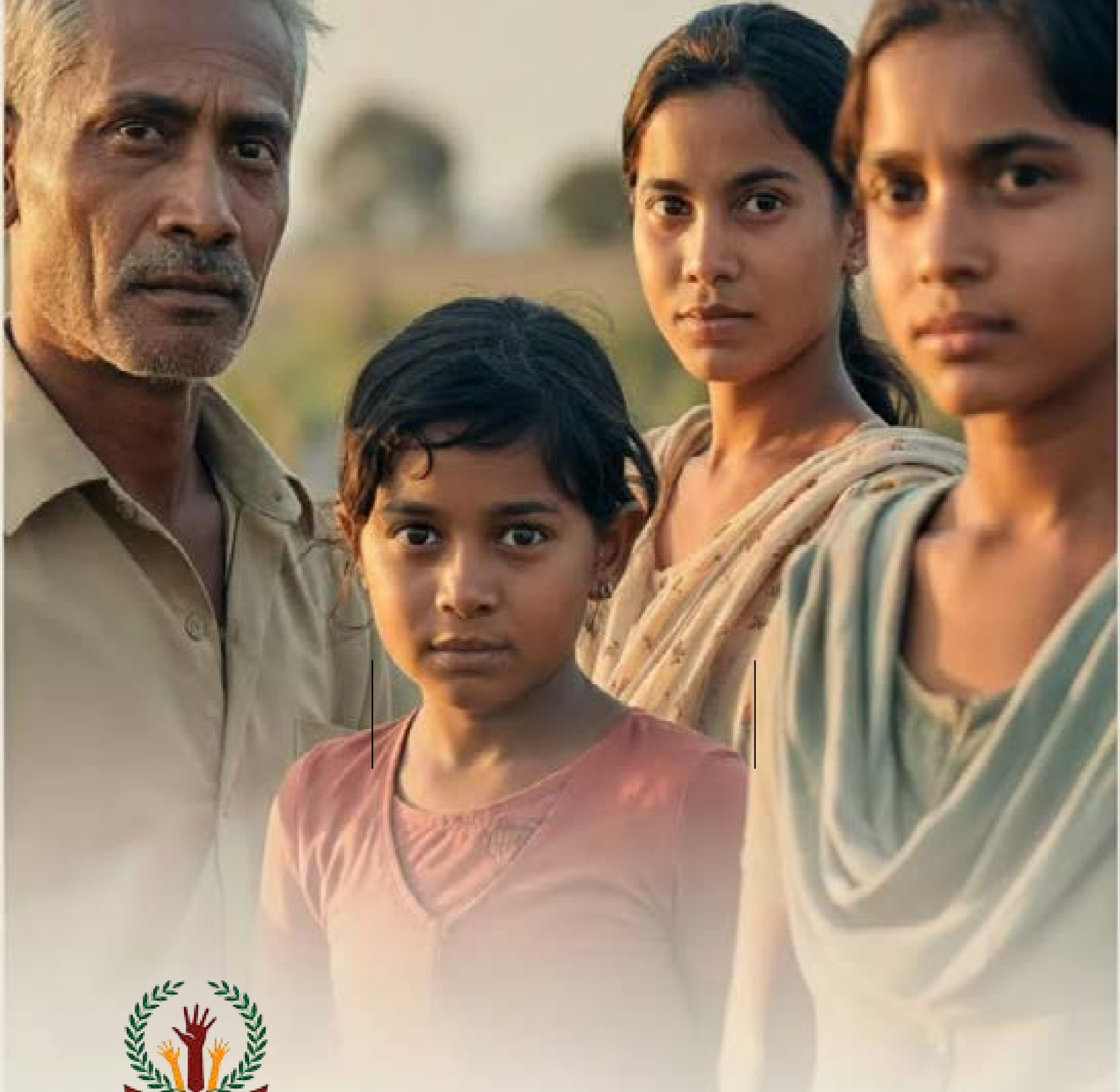

KIRTI TRUST

Compassion • Empowerment • Sustainability

EMPOWERING Lives
BUILDING Futures

CONTACT US

Head Office
M-131 ABL Work Space,
Connaught Place,
New Delhi-110001

Regd. Office
S-505, School Block,
Shakarpur, New
Delhi-110092

Project Office
Village & Post Office Kathura
District Sonipat (Haryana)
PIN- 131301

@kirtitrust
fb.com/kirtitrust
@kirti_trust

www.kirtitrust.org
info@kirtitrust.org

+91-9254-29-3293
+91-9050-29-3293

हरित क्रांति ने भारत को खाद्यान्न आयातक से कृषि निर्यातक राष्ट्र में बदल दिया। अब मुक्त व्यापार समझौते भारतीय किसानों के लिए वैश्विक बाजारों के नए द्वार खोल रहे हैं, लेकिन गुणवत्ता, आपूर्ति श्रृंखला और अंतरराष्ट्रीय मानकों की चुनौतियां इस नई कृषि यात्रा की सबसे बड़ी परीक्षा बनी हुई हैं।

श्रुति जैन

करीब छह दशक पहले, 1964-65 और 1965-66 में सूखे के कारण भारत को अनाज की भारी कमी का सामना करना पड़ा था। देश मुख्य रूप से अमेरिका के 'पब्लिक लॉ 480' (पीएल-480) यानी 'फूड फॉर पीस' प्रोग्राम पर निर्भर था। इस प्रोग्राम के तहत भारत को 20 लाख टन गेहूं मिला था। अमेरिका की इस मदद के साथ एक शर्त भी जुड़ी थी, जिसमें कूटनीति का इस्तेमाल किया गया था; राष्ट्रपति लिंडन बी। जॉनसन के नेतृत्व में अमेरिका ने भारत को घटिया क्वालिटी का गेहूं भेजा। अमेरिका चाहता था कि वियतनाम युद्ध को लेकर भारत अपनी आलोचना कम कर दे। अनाज के बदले अमेरिकी द्वारा चली गई ये कूटनीतिक चाल भारतीय कृषि के लिए टर्निंग प्वाइंट साबित हुआ। हरित क्रांति से भारत अनाज की कमी वाले देश से अनाज की अधिकता वाला देश बन गया। कई सालों के सुधारों और हरित क्रांति के बाद, भारत के कृषि क्षेत्र में बड़ा बदलाव आया है। भारत अब अनाज के आयतक से कृषि उत्पादों का सबसे बड़े निर्यातकों में से एक बन गया है। वित्त वर्ष 2025 में, भारत के कृषि निर्यात का कुल मूल्य 51.2 अरब डॉलर था। आज भारत, चीनी, गेहूं, चावल, दालों और अन्य अनाजों का दुनिया के सबसे बड़े निर्यातकों में से एक है।

व्यापार समझौतों की भूमिका

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में खेती का क्षेत्र सबसे अहम बना हुआ है,

जैसा कि व्यापार समझौतों के ज़रिए नए मौके तलाशने की सरकार की कोशिशों से पता चलता है। ओमान, ब्रिटेन, न्यूज़ीलैंड, यूरोपियन यूनियन (ईयू), संयुक्त अरब अमीरात और मॉरिशस के साथ हुए कई व्यापार समझौतों का मकसद भारतीय किसानों के लिए बाज़ार तक पहुंच बढ़ाना रहा है। हाल ही में हुए भारत-ओमान व्यापक आर्थिक साझेदारी समझौते (सीईपीए) ने टैरिफ खत्म करके और ड्यूटी-फ्री पहुंच देकर भारतीय कृषि उत्पादों के लिए नए मौके खोले हैं। इससे भारतीय निर्यातकों के लिए बाज़ार तक पहुंच और कीमत के मामले में मुकाबला करने की क्षमता बेहतर हुई है। भारत-ब्रिटेन कॉम्प्रिहेंसिव इकोनॉमिक एंड ट्रेड एग्रीमेंट (सीईटीए) से उत्पादों के लिए अच्छी कीमतें मिलने और भारतीय निर्यात में लगभग 50 प्रतिशत की बढ़ोतरी होने की उम्मीद है। महाराष्ट्र, केरल, गुजरात और पूर्वोत्तर जैसे प्रमुख कृषि राज्यों को फलों, मसालों, बागवानी उत्पादों और कपास के निर्यात से लाभ होने की संभावना है। इस समझौते से कॉफी, चाय, तिलहन और समुद्री उत्पादों के निर्यात के लिए भी नए अवसर पैदा होने की उम्मीद है। इसी तरह, भारत-न्यूज़ीलैंड मुक्त व्यापार समझौते का मकसद भारत के बागवानी क्षेत्र में क्षमता बढ़ाना है। इस समझौते में 'सेंटर ऑफ़ एक्सीलेंस' बनाना शामिल है, ताकि तकनीकी सहायता, बेहतर बुवाई सामग्री, फसल कटाई के बाद के तरीकों, खाद्य सुरक्षा उपायों और आपूर्ति श्रृंखला के विकास के ज़रिए किसानों की क्षमता बढ़ाई जा सके। इसके अलावा, भारत-यूएई के बीच भी एक व्यापाक समझौता हुआ है, जिसका मक़सद एक 'खाद्य सुरक्षा कॉरिडोर' के ज़रिए टिकाऊ सप्लाई चेन बनाना है। ये भारतीय किसानों को सीधे संयुक्त अरब अमीरात के बाज़ारों से जोड़ेगा।

अभी बनी हुई हैं चुनौतियां

हालांकि, निर्यात पर आधारित कृषि अर्थव्यवस्था को कई तकनीकी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जो व्यापार समझौते से होने वाले फायदों और कोशिशों को कम कर सकती हैं। विकसित देशों में खाने-पीने की चीज़ों की सुरक्षा से जुड़े कड़े नियम और उन्हें मानने की ज़रूरतें भारतीय कृषि उत्पादों के निर्यात में रुकावट डालती हैं। उदाहरण के लिए, यूरोपियन यूनियन में पेस्टिसाइड्स के लिए 'मैक्सिमम रेसिड्यू लेवल्स' के कड़े नियम भारतीय किसानों के लिए कृषि लागत बढ़ा देते हैं। खराब स्टोरेज और सप्लाई चेन की वजह से भारतीय बासमती चावल एफलाटॉक्सिन से दूषित हो जाता है, जिससे उत्पाद खारिज़ कर दिया जाता है। सख्त सैनिटरी और फाइटोसैनिटरी (एसपीए) नियमों की वजह से बागवानी उत्पादों के भारतीय निर्यात को भी अस्वीकृति का सामना करना पड़ा है। भारत की कृषि मूल्य श्रृंखलाओं में बिखराव, जानकारी की कमी और कई तरह की बाधाएं खाद्य सुरक्षा मानकों का पालन करने में रुकावट डालती हैं। टिकाऊ खाद्य प्रणालियों की बढ़ती वैश्विक मांग से निकट भविष्य में भारतीय किसानों के लिए ऐसी चिंताएं बढ़ सकती हैं।

कैसे बढ़ सकता है भारतीय कृषि निर्यात?

व्यापार समझौतों का पूरा फायदा उठाने के लिए भारत को कृषि और खाद्य संस्करण सेक्टर को बढ़ावा देना होगा। इसके लिए विश्वस्तरीय मानकों के हिसाब से काम करना, खेती के अच्छे तरीकों को अपनाना और अपनी सप्लाई चेन को मज़बूत करना ज़रूरी है। उत्पाद का पता लगाने की क्षमता (प्रोडक्ट ट्रेसेबिलिटी) विकसित करना एक ऐसा तरीका है, जिससे किसान देश के मानकों को पूरा करने के लिए ज़रूरी जानकारी हासिल कर सकते हैं। ये काम एग्रीकल्चरल एंड प्रोसेस्ड फ़ूड प्रोडक्ट्स एक्सपोर्ट डेवलपमेंट अथॉरिटी (अपेडा) के तय किए गए तरीकों को और बढ़ाकर किया जा सकता है। इस प्राधिकरण से जुड़े एक एकीकृत ट्रेसेबिलिटी प्लेटफ़ॉर्म के ज़रिए किसानों और उत्पादकों को बैकवर्ड और फ़ॉरवर्ड ट्रेसेबिलिटी और क्वालिटी इश्योरेंस डेटा की उपलब्धता सुनिश्चित करने में मदद मिल सकती है। उदाहरण के लिए, 'सीड ऑथेंटिसिटी ट्रेसेबिलिटी एंड होलिस्टिक इन्वेंट्री' (साथी) सिस्टम पहले से ही लागू है, और ये किसानों को बीज उत्पादन, क्वालिटी सर्टिफ़िकेशन, ट्रेसेबिलिटी और वितरण के समग्र प्रबंधन में मदद करता है।

इसके साथ ही, किसानों को रजिस्ट्रेशन, सर्टिफ़िकेशन और टेस्टिंग के लिए सब्सिडी और विशेष अनुदान भी दिया जा सकता है। किसान उत्पादक संगठन (एफपीओ) और स्वयं-सहायता समूहों (एसएचजी) के ज़रिए साझा बुनियादी ढांचे और सुविधाओं तक पहुंचने से छोटे किसानों को निर्यात के लिए ज़रूरी साधन मिल सकते हैं। इसके साथ ही, उत्पादकों को फसल के हिसाब से अपडेटेड जानकारी भी दी जा सकती है।

भारत के लिए प्रोसेसिंग, स्टोरेज, पैकेजिंग, डिस्ट्रीब्यूशन और होलसेल के ज़रिए डाउनस्ट्रीम फॉरवर्ड लिंकेज बनाना बहुत ज़रूरी है। भारत का कृषि क्षेत्र पहले ही डाउनस्ट्रीम वैल्यू चेन की ओर बढ़ने के संकेत दे रहा है। स्टोरेज, कोल्ड स्टोरेज रूम, नियंत्रित तापमान वाले गोदाम और बेहतर लॉजिस्टिक्स में निवेश से किसानों को मज़बूरी में फसल बेचने से बचने और सप्लाई चेन के ज़रिए उपज को समय पर पहुंचाने में मदद मिल सकती है। इसके अलावा, किसानों को ग्लोबल मार्केट तक बेहतर पहुंच दिलाने के लिए खेती के सही तरीकों पर ज़ोर देना ज़रूरी है।

हालांकि, व्यापार समझौते तेज़ी से बाज़ार तक बेहतर पहुच और क्षमता निर्माण को संभव बना रहे हैं, लेकिन कृषि उत्पादों के निर्यात को बढ़ावा देने के लिए सरकार और किसानों को भी बेहतर काम करना होगा। भारतीय उत्पादों को वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाना होगा, तभी आर्थिक साझेदारियों की पूरी क्षमता का लाभ मिलेगा।

श्रुति जैन ऑब्ज़र्वर रिसर्च फाउंडेशन के सेंटर फॉर डेवलपमेंट स्टडीज़ में एसोसिएट फेलो हैं।

नैरेटिव का कुरुक्षेत्र

संतोष कुमार

6 जून की वह तपती दोपहर, जब जंतर-मंतर की ऐतिहासिक डामर पर राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं और जन-असंतोष का कोलाहल उतरा, तो वह केवल एक विरोध प्रदर्शन नहीं था, बल्कि दो विपरीत अधि-वृतांतों के सीधे घर्षण का दृश्य प्रतिवेदन था। उस स्थान पर, जहां दशकों से इडली-डोसा की सुगंध कार्यालय जाने वालों और पर्यटकों की क्षुधा शांत करती रही है, वहां उस दिन कूटनीतिक जकड़न और सामाजिक ध्रुवीकरण की तीक्ष्ण गंध व्याप्त थी। पुलिस के अवरोधों, 'फ्री चर्च' की मौन उपस्थिति और सोशल मीडिया के प्रहरियों के मध्य कॉकरोच जनता पार्टी (सीजेपी) के नायक अभिजीत दीपके का आगमन उस राजनैतिक नाटक के प्रारंभ की घोषणा थी, जिसका ध्येय भारतीय युवा मानस के भीतर एक नवीन जेन ज़ी विवर्तन को प्रज्वलित करना था।

अभिजीत दीपके, जिन्होंने इस विरोध के लिए विधिक स्वीकृति प्राप्त की थी, मध्याह्न तक उस स्थल पर पहुंचे जहां 'जनता दल (यू)' के कार्यालय के सम्मुख सैकड़ों प्रदर्शनकारियों का जमावड़ा लग चुका था। कुछ उत्साही युवक पुलिस की चेतावनियों को अनसुना कर कार्यालय की प्राचीरों पर इस प्रकार आसीन थे, मानो वे किसी सामरिक निगरानी केंद्र पर हों। तकनीकी विसंगतियों के कारण माइक ने यद्यपि प्रारंभ में साथ नहीं दिया, किंतु संवाद की प्रक्रिया शीघ्र ही प्रस्फुटित हुई। विमर्श का केंद्र नीट परीक्षा के प्रश्नपत्र लीक होने की विद्रूपता थी, किंतु भाषणों का स्वर किसी एक बिंदु पर केंद्रित रहने के स्थान पर विभिन्न शिकायतों का एक अमूर्त सम्मिश्रण प्रतीत हो रहा था।

एक निर्भीक प्रति-विमर्श

जब प्रदर्शनकारी अपने-अपने तर्कों के माध्यम से व्यवस्था पर प्रहार कर रहे थे, तभी चाय की एक दुकान के समीप एक भिन्न ही दृश्य का अनावरण हुआ। मस्तक पर रक्तवर्ण तिलक और सलवार-कमीज धारण किए एक युवती ने इस विरोध प्रदर्शन को 'आतंकवादियों और अलगाववादियों के समर्थकों का मुखौटा' करार देकर समूचे वातावरण

को स्तब्ध कर दिया। जयपुर की रिधिमा शर्मा, जिन्होंने स्वयं को एक इंटीरियर डेकोरेटर बताया, ने अत्यंत प्रखर स्वर में प्रश्न किया- 'इन लोगों के पास पहलगाम की विभीषिका पर कहने के लिए कुछ क्यों नहीं है? क्या वहां मजहब कोई विषय नहीं था? हत्या से पूर्व पीड़ितों की धार्मिक पहचान क्यों पूछी गई? ये लोग सांप्रदायिकता के विरोध का स्वांग रचते हैं, किंतु वास्तविकता इनसे कोसों दूर है।' जब संचार माध्यमों के प्रतिनिधियों ने उन्हें शिक्षा और प्रश्नपत्र लीक के यथार्थ पर केंद्रित करने का प्रयास किया, तो रिधिमा का प्रतिघात और भी तीक्ष्ण था-'क्या आपको वास्तव में लगता है कि इन्हें शिक्षा की चिंता है? क्या मैं आपको इन आयोजकों के उमर खालिद के साथ छायाचित्र दिखाऊं?' यह हस्तक्षेप केवल एक व्यक्तिगत विचार नहीं था, बल्कि यह उस 'हिंदू दक्षिणपंथ' की सक्रिय लामबंदी का संकेत था, जो अब प्रति-नैरेटिव गढ़ने में निपुण हो चुका है।

ध्रुवीकरण का चरमोत्कर्ष

रिधिमा के तर्कों ने प्रदर्शनकारियों के मध्य एक अशांति उत्पन्न कर दी। एक दाढ़ी वाले व्यक्ति ने आक्रोश में चिल्लाकर कहा—'तुम उसे क्यों सुन रहे हो? वह कौन है? हमसे बात करो।' शीघ्र ही वह 'असंतुष्ट स्वर' एक उत्तेजित भीड़ से घिर गया। वातावरण इतना तनावपूर्ण हो गया कि ऐसा प्रतीत होने लगा मानो स्थिति नियंत्रण से बाहर हो जाएगी, किंतु तीन महिला पुलिसकर्मियों की सतर्कता ने किसी भी संभावित अनर्थ को टाल दिया। इस भीड़ में 'दीपक मोहम्मद' जैसे विवादित चरित्र भी सम्मिलित थे, जो पूर्व में कोटद्वार की घटनाओं के कारण सुर्खियों में रहे थे। लगभग दो घंटों तक चले इस वाक-युद्ध ने यह प्रमाणित कर दिया कि जंतर-मंतर अब केवल विरोध का स्थान नहीं, बल्कि वैचारिक कुरुक्षेत्र बन चुका है। रिधिमा शर्मा का शत्रुतापूर्ण पूछताछ और कैमरों के दबाव के सम्मुख अडिग रहना, उनकी व्यक्तिगत दृढ़ता और नेपथ्य में विद्यमान वैचारिक समर्थन का आधिकारिक प्रतिवेदन था।

डिजिटल कुरुक्षेत्र और नेपाल का प्रेत

रिधिमा शर्मा के सोशल मीडिया खातों का सूक्ष्म विश्लेषण उनके भारतीय जनता पार्टी के प्रति झुकाव को स्पष्ट करता है, किंतु विमर्श का महत्वपूर्ण पक्ष 'हिंदू दक्षिणपंथ' का वह संगठित प्रतिरोध है जो वर्तमान शासन के विरुद्ध पनप रहे किसी भी जन-असंतोष को कुंद करने के लिए तत्पर रहता है। यद्यपि नीट परीक्षा की सुरक्षा में विफलता एक अक्षम्य प्रशासनिक त्रुटि है, किंतु जंतर-मंतर का यह विमर्श शीघ्र ही विशुद्ध राजनैतिक रंग में रंग गया।

ऐसा आभास हो रहा था कि प्रदर्शनकारी सीजेपी को उस चिंगारी के रूप में देख रहे हैं जो नेपाल की तर्ज पर भारत में भी एक 'जेन ज़ी' विद्रोह की ज्वाला प्रज्वलित कर सके। किंतु प्रदर्शनकारियों की संख्या इन ऊँची आकांक्षाओं के सम्मुख अत्यंत अल्प थी। यदि वामपंथी छात्र संगठन आइसा का समर्थन प्राप्त न होता, तो यह जमावड़ा और भी संकुचित प्रतीत होता। 'आइसा' के एक पदाधिकारी ने पुष्टि की कि सीजेपी ने उनसे संपर्क किया था और वैचारिक साम्यता के आधार पर उन्होंने सहयोग प्रदान किया।

गर्जना तो हुई, किंतु वृष्टि शून्य रही

वर्तमान परिदृश्य में, एक वृहत लोक-कल्याणकारी संजाल, 'विकास' का निरंतर आश्वासन और निजी एवं सरकारी क्षेत्रों में बढ़ती नियुक्तियां किसी भी बड़े जन-विद्रोह की संभावना को न्यून कर रही हैं। भारत में फिलहाल 'जेन ज़ी' क्रांति के लिए कोई उर्वर भूमि शेष नहीं है। जंतर-मंतर का यह वैचारिक संघर्ष सिद्ध करता है कि 'हिंदुत्व' कोई सामयिक लहर नहीं, बल्कि एक सुदृढ़ लंगर है जो सांस्कृतिक और धार्मिक प्रतीकों के माध्यम से जनमानस को बांधे हुए है। यह एक ऐतिहासिक विडंबना ही है कि नेपाल की जिस क्रांति का उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है, उसने वास्तव में एक ऐसे कम्युनिस्ट शासन को उखाड़ फेंका जो भ्रष्टाचार और जड़ता का पर्याय बन चुका था। शायद 'आइसा' जैसे संगठन इस सूक्ष्म सत्य को समझने में चूक गए। जंतर-मंतर पर उस दिन बादलों की गर्जना तो सुनाई दी, किंतु परिवर्तन की वर्षा का वेग पूर्णतः नदारद था।

विनाश का बहीखाता

ट्रम्प के ईरान युद्ध का निष्ठुर यथार्थ

मैक्स बूट

ईरान युद्ध पर आंशिक विराम लग चुका है, लेकिन इसके पीछे छूटे मानवीय विनाश, आर्थिक तबाही और सामरिक कमजोरियों के सवाल आज भी अनुत्तरित हैं। लेखक मैक्स बूट का दावा है कि ट्रम्प की यह लड़ाई अमेरिका के लिए महंगी और अंततः निष्फल साबित हुई।

क्या यह सार्थक था? यह प्रश्न आज वाशिंगटन के गलियारों में एक अनुत्तरित विलाप की भांति गूँज रहा है। बीते दिनों एक 'मेमोरेंडम ऑफ अंडरस्टैंडिंग' (एमओयू) पर हस्ताक्षर के साथ ही ईरान युद्ध का समापन हो गया है - कम से कम वर्तमान के लिए। इसके पूर्ण परिणाम अभी स्पष्ट नहीं हैं। उदाहरण के लिए, हमें अभी तक यह ज्ञात नहीं है कि अपने परमाणु कार्यक्रम पर ईरान अंततः किन प्रतिबंधों पर सहमत होगा। यद्यपि, राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प द्वारा तेहरान को जो 'आर्थिक लाभ' प्रारंभ में ही प्रदान कर दिए गए हैं, वे इस्लामी गणराज्य की समझौता करने की इच्छाशक्ति को अत्यंत क्षीण कर देते हैं। किंतु एक तथ्य अभी से पूर्ण आत्मविश्वास के साथ कहा जा सकता है: यह युद्ध उस भारी मूल्य के योग्य नहीं था जो इसके लिए चुकाया गया है।

सर्वप्रथम, मानवीय क्षति का रक्तचरित्र हमारे सम्मुख है। इस संघर्ष में अमेरिका ने अपने तेरह सैनिकों को खोया, जबकि ईरान ने 3,375 से अधिक नागरिकों की आहुति दी, जिनमें एक बालिकाओं के विद्यालय पर हुए टोमहॉक मिसाइल प्रहार में मारे गए 170 निर्दोष भी सम्मिलित हैं। ईरान द्वारा इजराइल पर किए गए मिसाइल और ड्रोन आक्रमणों में छब्बीस लोग मारे गए, और दर्जनों अन्य खाड़ी देशों में काल के ग्रास बने। लेबनान में भी कम से कम दो हजार लोग मारे जा चुके हैं, जहां इजराइल ने हिज्बुल्लाह के हमलों के प्रत्युत्तर में एक भीषण सैन्य अभियान छेड़ रखा है।

तदुपरांत, आर्थिक आघात का लेखा-जोखा आता है। मूडीज एनालिटिक्स का अनुमान है कि इस युद्ध ने अमेरिकी उपभोक्ताओं और करदाताओं पर अब तक लगभग 132 अरब डॉलर का आर्थिक बोझ डाल दिया है, और यह गणना अभी भी जारी है। इसका सर्वाधिक प्रहार पेट्रोल पंप पर दृश्यमान हुआ। गैस की कीमतें 4.56 डॉलर प्रति गैलन के शिखर तक जा पहुँचीं। केवल तेल ही नहीं, युद्ध के दौरान उर्वरकों की कीमतों में भी लगभग 47 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जिसने परोक्ष रूप से खाद्य सामग्री की लागत को बढ़ा दिया। फारस की खाड़ी के राष्ट्र और ग्लोबल साउथ तो अमेरिका से भी अधिक भीषण रूप से प्रभावित हुए। इस युद्ध के परिणामस्वरूप, विश्व बैंक ने इस वर्ष के लिए वैश्विक आर्थिक विकास के पूर्वानुमान को घटाकर 2.5 प्रतिशत कर दिया है - जो कोविड-19 महामारी के पश्चात का निम्नतम स्तर है।

अंतिम स्तंभ सैन्य लागत की विभीषिका है। 'वॉल स्ट्रीट जर्नल' के अनुसार, उप-रक्षा सचिव ने पिछले सप्ताह ही कांग्रेस के सदस्यों को सूचित किया है कि विभाग युद्ध की लागत और अन्य व्ययों को पूर्ण करने के लिए 80 अरब डॉलर के पूरक बजट की मांग करेगा। यह आंकड़ा निश्चित रूप से वास्तविक व्यय का एक अत्यंत संकुचित आकलन है। इसमें, उदाहरण के लिए, क्षेत्र के उन बीस अमेरिकी सैन्य अड्डों की मरम्मत की लागत सम्मिलित नहीं है, जिन्हें ईरानी आक्रमणों ने क्षति पहुँचाई है। इस संघर्ष में प्रयुक्त उच्च-श्रेणी की अमेरिकी मिसाइलों को प्रतिस्थापित करना और भी कठिन एवं खर्चीला सिद्ध होगा। अमेरिका ने एक हजार से अधिक टोमहॉक क्रूज मिसाइलें और 1,500 से अधिक वायु-रक्षा मिसाइलें दागीं। व्यय किए गए इन गोला-बारूद में पैट्रियॉट मिसाइलों का वह आधा भंडार भी सम्मिलित है, जिसकी यूक्रेन को रूसी मिसाइल हमलों से रक्षा हेतु नितांत आवश्यकता थी। इन भंडारों को पुनः भरने में छह वर्ष तक का समय लग सकता है, और इस अंतराल में संयुक्त राज्य अमेरिका चीन या रूस के विरुद्ध किसी बड़े संघर्ष के लिए सामरिक रूप से अत्यंत निर्बल रहेगा।

क्षेत्र के अन्य राष्ट्रों ने भी व्यापक विनाश झेला है। एक अनुमान के अनुसार, खाड़ी देशों को लगभग 58 अरब डॉलर की क्षति हुई है। ईरान को हुई क्षति तो और भी विस्तृत है, कुछ आकलनों के अनुसार, पुनर्निर्माण के लिए उसे 300 अरब डॉलर की आवश्यकता होगी। इसके पश्चात भी, ईरान अपने अधिकांश ड्रोन और मिसाइल बेड़े को सुरक्षित

रखने में सफल रहा है। यद्यपि बमबारी से उसके परमाणु कार्यक्रम को आघात पहुँचा है - विशेषकर जून 2025 में अमेरिकी और इजराइली विमानों द्वारा किए गए हमलों से - किंतु माना जा रहा है कि शासन के पास अभी भी लगभग ग्यारह टन संवर्धित यूरेनियम के साथ-साथ बम बनाने की तकनीकी मेधा और क्षमता अक्षुण्ण है।

यद्यपि ईरान के साथ अंतरराष्ट्रीय वार्ताएं लंबे समय से उसके परमाणु कार्यक्रम पर केंद्रित रही हैं, किंतु इस संघर्ष ने ईरान को 'आर्थिक सामूहिक विनाश का एक नया शस्त्र' अनावरित करने का अवसर प्रदान कियाः ड्रोन, मिसाइलों और जल-सुरंगों के माध्यम से वह हॉर्मुज जलडमरूमध्य को लगभग पूर्णतः अवरुद्ध करने में सफल रहा। चूंकि इस जलमार्ग से विश्व का 20 प्रतिशत तेल प्रवाहित होता है, इसके बंद होने से समूचा विश्व ऊर्जा संकट के गर्त में गिर गया। इसी विवशता ने ट्रम्प को 'सत्ता परिवर्तन', ईरान के परमाणु एवं मिसाइल कार्यक्रमों के विनाश, या हिज्बुल्लाह जैसे छद्म समूहों को मिलने वाले समर्थन को समाप्त किए बिना ही युद्ध विराम के लिए विवश कर दिया।

एमओयू की उदार शर्तें - जिसके अंतर्गत अमेरिका ने ईरान को प्रतिबंधों में छूट, जमी हुई पूंजी तक पहुंच और 300 अरब डॉलर का पुनर्निर्माण कोष प्रदान करने का संकल्प लिया है- वास्तव में हॉर्मुज को पुनः खोलने की विवशता का मूल्य है। यह मूल्य भविष्य में और बढ़ सकता है, क्योंकि इस समझौते के अधीन ईरान ने केवल साठ दिनों के लिए इस महत्वपूर्ण जलमार्ग तक अबाध पहुंच प्रदान करने का वचन दिया है। तेहरान ने स्पष्ट संकेत दिए हैं कि वह इसके पश्चात ओमान के साथ समन्वय कर यूजर फीस वसूलने का प्रयास करेगा, जो वास्तव में टोल का ही दूसरा नाम है। यह 'नेविगेशन की स्वतंत्रता' के उस सिद्धांत का उल्लंघन होगा, जिसे अमेरिका अपने गणतंत्र के प्रारंभिक दिनों से ही अक्षुण्ण रखता आया है।

संक्षेप में, ईरान युद्ध की आर्थिक, सैन्य और मानवीय लागत अत्यधिक रही, किंतु वास्तविक प्रतिफल नगण्य है। वास्तव में, यह युद्ध ईरान के दुस्साहस और उसकी सामर्थ्य को और अधिक बल प्रदान करेगा। तेहरान अब इस बात का दंभ भर सकता है कि वह अमेरिका और इजराइल के संयुक्त आक्रमण को झेलकर भी अपने शासन को सुरक्षित रखने में सफल रहा। वह अब प्रतिबंधों से मुक्त हुई पूंजी का उपयोग न केवल अपनी अर्थव्यवस्था बल्कि अपनी सैन्य क्षमता के पुनर्निर्माण और हिज्बुल्लाह जैसे समूहों के संवर्धन के लिए करेगा। ट्रम्प राजनैतिक संदेशों के प्रेषण में महापंडित हो सकते हैं, किंतु इस संघर्ष को एक 'भीषण पराजय' के अतिरिक्त कोई अन्य रूप देना उनके लिए भी दुष्कर सिद्ध होगा।

मैक्स बूट एक इतिहासकार, विख्यात लेखक और विदेशी मामलों के विश्लेषक हैं। वे 'काउंसिल ऑन फॉरेन रिलेशंस' में राष्ट्रीय सुरक्षा अध्ययन के वरिष्ठ फेलो हैं।

7 व 8 जुलाई 2026 का अंकारा शिखर सम्मेलन यूरोपीय सहयोगियों के लिए एक 'विजय प्रस्थान' होना था। द हेग के गैदरिंग के पश्चात उन्होंने अपनी रक्षा व्यय की सांख्यिकी को एक 'विजेता स्कोरकार्ड' के रूप में प्रस्तुत करने की योजना बनाई थी। यूरोपीय राष्ट्रों ने न केवल अपनी जीडीपी का 2 प्रतिशत रक्षा पर व्यय करने का लक्ष्य प्राप्त किया था, बल्कि वे 2035 तक 3.5 प्रतिशत के नवीन सामरिक लक्ष्य की ओर भी अग्रसर थे। पोलैंड, बाल्टिक राज्य और जर्मनी इस पुनर्शस्त्रीकरण की दौड़ में अग्रणी थे, जिनका ध्येय रूस के विरुद्ध एक 'वास्तविक मारक क्षमता' निर्मित करना था। नाटो महासचिव मार्क रुटे ने वाशिंगटन में स्पष्ट किया था कि 'रूस प्रतिबद्धताओं से नहीं, बल्कि क्षमताओं से भयभीत होता है।' किंतु यह समस्त कूटनीतिक उत्साह ईरान युद्ध की विभीषिका में भस्म हो गया।

वाशिंगटन के लिए अंकारा का यह सम्मेलन 'नाटो के इतिहास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण बैठक'बन गया, किंतु उन कारणों से नहीं जिसकी यूरोप को प्रतीक्षा थी। स्पेन के प्रधानमंत्री पेड्रो सांचेज़ द्वारा अमेरिकी सेना को अपने अड्डों और वायुक्षेत्र के उपयोग से वर्जित करना, कूटनीति के पाश में एक घातक गांठ सिद्ध हुआ। इटली के विधिक अवरोधों और ब्रिटेन की प्रारंभिक हिचकिचाहट ने इस सामरिक गठबंधन के भीतर के अंतर्विरोधों को नग्न कर दिया है। अमेरिकी विदेश मंत्री मार्को रूबियो का यह वक्तव्य कि 'यहाँ बहुत सी त्रुटियों को सुधारने की आवश्यकता है,'उस कूटनीतिक वज्रपात की प्रस्तावना थी जो अब नाटो के अस्तित्व को ही संकट में डाल रहा है।

वाशिंगटन ने इस 'असहयोग' को आधार बनाकर यूरोप से अपनी सैन्य उपस्थिति के 'एकपक्षीय विलोपन' की प्रक्रिया तीव्र कर दी है। रक्षा सचिव पीट हेगसेथ ने ब्रसेल्स की बैठक में यूरोपीय रुख को 'लज्जाजनक'बताते हुए अमेरिकी सैन्य स्थिति की छह-मासिक समीक्षा का उद्घोष कर दिया। मीडिया रिपोर्टों के अनुसार, अमेरिका अब नाटो को आवंटित अपने एफ-16 और एफ-15 विमानों के बेड़े में एक-तिहाई और सामरिक बमवर्षकों में आधी कटौती करने की योजना बना रहा है। यही नहीं, संकट के समय प्रयुक्त होने वाले विमानवाहक पोत और मिसाइल-लॉन्चिंग पनडुब्बी को भी नाटो के साझा पूल से पृथक किया जा सकता है। ट्रम्प प्रशासन द्वारा जर्मनी से पांच हजार सैनिकों की वापसी की घोषणा इस सामरिक विलगन का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

यूरोपीय राष्ट्र एक 'नाटो 3.0' के ढांचे के भीतर रक्षा उत्तरदायित्वों के व्यवस्थित हस्तांतरण की प्रत्याशा में थे। वे एक ऐसे रोडमैप की खोज में थे जो उन्हें सुरक्षा की निरंतरता प्रदान कर सके। किंतु अमेरिका के वर्तमान रुख ने उन्हें एक 'सामरिक शून्य' में धकेल दिया है। उपग्रह प्रणालियों, प्रारंभिक चेतावनी तंत्र, कृत्रिम मेधा, साइबर सुरक्षा और इलेक्ट्रॉनिक युद्धकला जैसे क्षेत्रों में यूरोप आज भी वाशिंगटन की

नाटो के बिखरते कवच

अंकारा की पहाड़ियों पर आयोजित नाटो शिखर सम्मेलन इस बार उपलब्धियों का उत्सव नहीं, बल्कि एक खंडित साझीदारी की शोकसभा सिद्ध हुआ है। ईरान युद्ध की लपटों ने वाशिंगटन और ब्रसेल्स के मध्य अविश्वास की वह खाई खोद दी है, जिसे पाटना अब असंभव प्रतीत होता है।

बैसाखियों पर टिका है। अमेरिकी नीति-निर्माताओं का तर्क है कि इस प्रकार का दबाव ही यूरोप को अपनी जड़ता त्यागने के लिए विवश करेगा, किंतु यह नीति समूचे यूरोप के सुरक्षा कवच को अत्यंत संवेदनशील और असुरक्षित मोड़ पर छोड़ रही है। अंकारा के इस विवर्त से जो सत्य उभर रहा है, वह अत्यंत निष्ठुर है। यूरोप को अब यह स्वीकार करना होगा कि अमेरिका के साथ उसका सामरिक हनीमून समाप्त हो चुका है। अब प्रश्न यह नहीं है कि अमेरिका कब तक सुरक्षा प्रदान करेगा, बल्कि प्रश्न यह है कि यूरोप स्वयं का 'रक्षा मार्ग' कितनी तीव्रता से गढ़ सकता है।

वाशिंगटन अब यूरोपीय सुरक्षा से स्वयं को क्रमिक रूप से विच्छेदित करने के मार्ग पर अडिग है। यद्यपि अमेरिकी कांग्रेस इस विस्थापन को रोकने हेतु विधिक अवरोध निर्मित करने का प्रयास कर रही है, किंतु भू-राजनीतिक यथार्थ का प्रवेग अत्यंत तीव्र है। यूरोप के लिए कूटनीतिक शिथिलता का समय समाप्त हो चुका है। यदि वह अब भी वाशिंगटन की छाया में स्वयं को सुरक्षित मान लेने की मृगतृष्णा में लिप्त रहता है, तो भविष्य का इतिहास उसे एक 'असहाय महाद्वीप' के रूप में स्मरण करेगा।

श्रीराजेश

GEN Z:
नई सभ्यता की पहली पीढ़ी

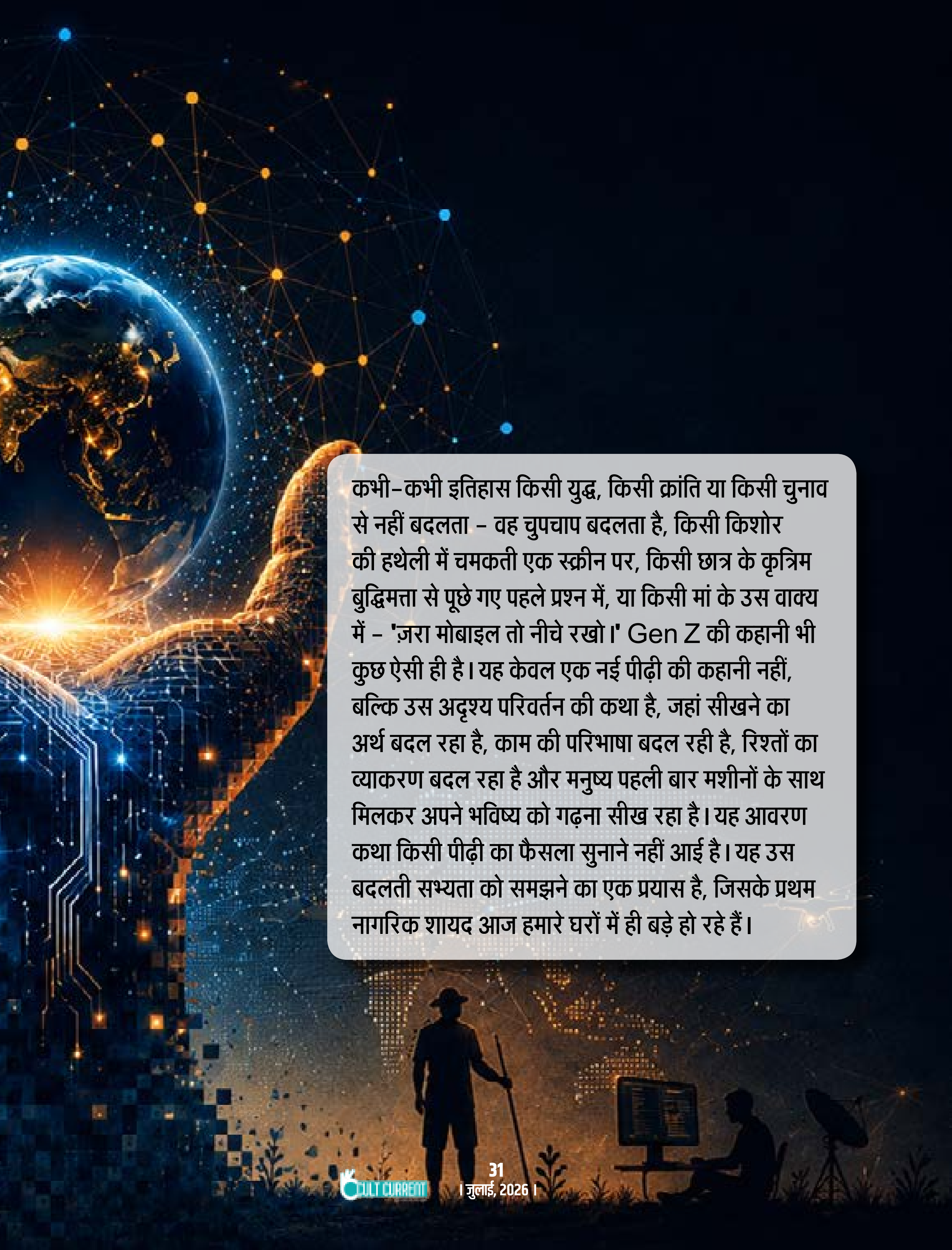

कभी–कभी इतिहास किसी युद्ध, किसी क्रांति या किसी चुनाव से नहीं बदलता – वह चुपचाप बदलता है, किसी किशोर की हथेली में चमकती एक स्क्रीन पर, किसी छात्र के कृत्रिम बुद्धिमत्ता से पूछे गए पहले प्रश्न में, या किसी मां के उस वाक्य में – 'ज़रा मोबाइल तो नीचे रखो।' Gen Z की कहानी भी कुछ ऐसी ही है। यह केवल एक नई पीढ़ी की कहानी नहीं, बल्कि उस अदृश्य परिवर्तन की कथा है, जहां सीखने का अर्थ बदल रहा है, काम की परिभाषा बदल रही है, रिश्तों का व्याकरण बदल रहा है और मनुष्य पहली बार मशीनों के साथ मिलकर अपने भविष्य को गढ़ना सीख रहा है। यह आवरण कथा किसी पीढ़ी का फैसला सुनाने नहीं आई है। यह उस बदलती सभ्यता को समझने का एक प्रयास है, जिसके प्रथम नागरिक शायद आज हमारे घरों में ही बड़े हो रहे हैं।

मानव इतिहास कभी एक-जैसी गति से नहीं बहता। अधिकांश समय वह एक शांत नदी की तरह आगे बढ़ता है - शताब्दियां बीत जाती हैं, पर मनुष्य का जीवन लगभग वैसा ही बना रहता है। फिर अचानक इतिहास करवट लेता है। कुछ दशक ऐसे आते हैं, जो सदियों पर भारी पड़ जाते हैं। समाज बदलता है, अर्थव्यवस्था बदलती है, सत्ता के केंद्र बदलते हैं और सबसे बढ़कर बदल जाती है मनुष्य की स्वयं को देखने की दृष्टि।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में औद्योगिक क्रांति ने ऐसा ही मोड़ रचा। मशीनों ने केवल उत्पादन की गति नहीं बढ़ाई, उन्होंने मनुष्य और श्रम के संबंध को ही पुनर्परिभाषित कर दिया। बीसवीं शताब्दी में दो विश्वयुद्धों ने केवल राजनीतिक सीमाएं नहीं बदलीं, बल्कि मानव चेतना का भूगोल भी बदल दिया। शीत युद्ध ने दुनिया को विचारधाराओं में बांटा, और इंटरनेट ने पहली बार उसे एक साझा डिजिटल परिदृश्य में जोड़ दिया।

अब, इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में खड़े होकर जब हम अपने समय को देखते हैं, तो एक असहज-सा प्रश्न सामने खड़ा दिखाई देता है - क्या हम भी किसी ऐसे ही ऐतिहासिक मोड़ के साक्षी हैं?

अंतर केवल इतना है कि इस बार परिवर्तन किसी साम्राज्य, किसी युद्ध या किसी क्रांति का नहीं, बल्कि एक पूरी पीढ़ी का है। उस पीढ़ी का, जिसे दुनिया जेन जेड के नाम से जानती है। लेकिन क्या जेन जेड केवल एक आयु-समूह है? क्या वह 1997 से 2012 के बीच जन्मे युवाओं का महज़ एक सांख्यिकीय वर्गीकरण है? या फिर उसके भीतर ऐसा कुछ घटित हो चुका है, जो आने वाले समाज, अर्थव्यवस्था, राजनीति और संस्कृति की दिशा बदलने वाला है?

क्या हम केवल एक नई पीढ़ी को देख रहे हैं... या एक नई सभ्यता के प्रथम नागरिकों को जन्म लेते हुए?

यही प्रश्न इस पूरी आवरण कथा की प्रेरणा है।

पहली आहट

इंटरनेट, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और बदलते मनुष्य की महागाथा

क्रिकेट के प्रति दीवानगी ने 12 वर्षीय हेमेश चडलावाडा को 'हीट डिटेक्टर' का आविष्कारक बना दिया।

रात के तीन बजे हैं।

जयपुर के मालवीय नगर स्थित एक अपार्टमेंट की पांचवीं मंज़िल पर लगभग पूरा घर सो चुका है। ड्राइंग रूम की घड़ी भी अब मानो धीमे चलने लगी है। केवल एक कमरे के दरवाज़े के नीचे से नीली रोशनी की एक पतली रेखा बाहर फिसल रही है।

कमरे के भीतर उन्नीस वर्षीय आरव बैठा है। उसके सामने न कोई मोटी किताब खुली है, न कॉपी, न कोई शिक्षक। उसकी हथेली में एक स्मार्टफ़ोन है, और उसकी स्क्रीन पर एक साथ कई संसार जीवित हैं।

एक विंडो में AI चैटबॉट उसके प्रोजेक्ट की रूपरेखा समझा रहा है। दूसरी में जापान का एक डिज़ाइनर लाइव स्ट्रीम पर अपनी नई तकनीक प्रदर्शित कर रहा है। तीसरी में मित्रों का ग्रुप चैट लगातार सक्रिय है। और चौथी टैब में वह अगले सप्ताह की इंटर्नशिप के लिए अपना पोर्टफोलियो को अंतिम रूप दे रहा है।

घड़ी में अभी भी तीन बजे हैं। लेकिन आरव के लिए रात नहीं हुई। उसकी दुनिया घड़ियों से नहीं, कनेक्टिविटी से चलती है।

जब जयपुर सोता है, तब कैलिफ़ोर्निया जाग रहा होता है। जब दिल्ली की सड़कें शांत होती हैं, तब सियोल में कोई नया डिजिटल ट्रेंड आकार ले रहा होता है। और जब भारत के अधिकांश माता-पिता अपने बच्चों से कहते हैं - 'अब मोबाइल बंद करो...' - उसी समय दुनिया के किसी दूसरे कोने से कोई नया विचार उनकी स्क्रीन पर दस्तक दे रहा होता है।

आरव अकेला नहीं है। वह करोड़ों युवाओं का प्रतिनिधि है।

करीब पंद्रह सौ किलोमीटर दूर, बिहार के सारण ज़िले के सिताब दियारा के एक गांव में एक दूसरा युवक भी अपने छोटे-से कमरे में बैठा है। उसका मोबाइल पांच वर्ष पुराना है। इंटरनेट की गति महानगर जैसी नहीं है। फिर भी उसी छोटी-सी स्क्रीन पर वह प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी कर रहा है, किसी शिक्षक का व्याख्यान सुन रहा है और साथ ही दुनिया भर की खबरों से जुड़ा हुआ है।

दोनों युवाओं की दुनिया अलग है। सुविधाएं अलग हैं। भाषाएं अलग हैं। लेकिन उनका डिजिटल अनुभव आश्चर्यजनक रूप से एक-दूसरे से मिलता-जुलता है। शायद इसलिए आज भारत में गांव और महानगर के बीच की दूरी केवल सड़कें नहीं घटा रहीं, इंटरनेट उसे कहीं अधिक तेजी से कम कर रहा है।

यहीं से एक मूल प्रश्न जन्म लेता है। क्या जेन जेड को केवल उसकी उम्र से समझा जा सकता है? या उसे समझने के लिए उसकी डिजिटल परवरिश को समझना होगा?

हर पीढ़ी अपने समय की तकनीक के साथ बड़ी होती है। हमारे दादा-दादी ने रेडियो को चमत्कार की तरह देखा। हमारे माता-पिता ने टेलीविज़न को आधुनिकता का प्रतीक माना। हमारी पीढ़ी ने इंटरनेट का उपयोग करना सीखा।

लेकिन जेन जेड... उसने इंटरनेट का उपयोग करना नहीं सीखा। उसने उसी में आंखें खोलीं। यही वह अंतर है जिसे हम अक्सर नज़रअंदाज़ कर देते हैं। हम मान लेते हैं कि स्मार्टफ़ोन केवल एक उपकरण है, सोशल मीडिया केवल संवाद का माध्यम है और कृत्रिम बुद्धिमत्ता केवल एक नई तकनीक। लेकिन जब इन सबको एक साथ देखें, तो तस्वीर कहीं अधिक व्यापक दिखाई देती है। पहली बार तकनीक हमारे जीवन के बाहर नहीं, भीतर प्रवेश कर चुकी है। वह हमारी स्मृति का विस्तार है। हमारी भाषा का माध्यम है। हमारे संबंधों का पुल है। हमारी जिज्ञासा का पहला पड़ाव है। और कई बार हमारी कल्पना की पहली सीमा भी।

यही वजह है कि जेन जेड को समझने के लिए उसकी आदतों का अध्ययन पर्याप्त नहीं। हमें उसके मानसिक भूगोल को समझना होगा। उस दुनिया को समझना होगा, जहां 'ऑनलाइन' और 'ऑफलाइन' दो अलग-अलग अवस्थाएं नहीं, बल्कि एक ही जीवन के दो आयाम हैं।

यहीं सबसे गहरी पीढ़ीगत दूरी जन्म लेती है। जब कोई पिता अपने बेटे से पूछता है - 'इतना मोबाइल क्यों चलाते हो?' - तो वह केवल एक उपकरण देख रहा होता है। लेकिन उसका बेटा उस स्क्रीन में अपनी कक्षा, अपना पुस्तकालय, अपना रोजगार, अपना मित्र-मंडल, अपनी अभिव्यक्ति का मंच और कई बार अपना एकांत देख रहा होता है।

पुरानी पीढ़ी उपकरण देखती है। नई पीढ़ी परिवेश। और शायद इसी अंतर को समझे बिना जेन जेड पर होने वाली अधिकांश बहसें अधूरी रह जाएंगी।

यहीं से इस विशेषांक की वास्तविक यात्रा शुरू होती है।

हम यह सिद्ध करने नहीं निकले हैं कि जेन जेड बेहतर है या बदतर। न ही हमारा उद्देश्य उसे अपने पहले की पीढ़ियों से अधिक बुद्धिमान या अधिक भ्रमित घोषित करना है। हमारी जिज्ञासा कहीं अधिक बुनियादी है - आखिर ऐसा क्या बदल गया कि एक ही घर में रहने वाली दो पीढ़ियां कई बार एक-दूसरे की भाषा, तर्क और जीवन-दृष्टि तक को समझने में असमर्थ दिखाई देती हैं?

माता-पिता 'स्क्रीन टाइम' देखते हैं, जबकि युवा उसी स्क्रीन में अपना जीवन देखते हैं। शिक्षक कहते हैं कि छात्रों का ध्यान भटक गया है, जबकि छात्र दावा करते हैं कि वे पहले से कहीं अधिक सीख रहे हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता से सबसे कम भय उसी पीढ़ी को है, जिसकी नौकरियों पर उसके सबसे अधिक प्रभाव पड़ने की आशंका जताई जा रही है।

इन प्रश्नों का उत्तर किसी एक आंकड़े, किसी एक सर्वेक्षण या किसी एक विशेषज्ञ के पास नहीं मिलेगा। वे उस सामाजिक परिवर्तन में छिपे हैं, जिसकी परतें हम इस पूरी आवरण कथा में खोलने का प्रयास करेंगे।

यही कारण है कि जेन जेड को लेकर दुनिया भर में जितनी बहसें हैं, उतने ही भ्रम भी हैं। एक पक्ष उसे इतिहास की सबसे आत्मकेंद्रित पीढ़ी कहता है। दूसरा उसे सबसे संवेदनशील। किसी के लिए वह 'मोबाइल में खोई हुई पीढ़ी' है, तो किसी के लिए 'इतिहास की सबसे जागरूक पीढ़ी'।

एक ही पीढ़ी को लेकर इतने विरोधाभासी निष्कर्ष क्यों?

शायद इसलिए कि हम अब भी उसे पुराने चश्मे से देखने की कोशिश कर रहे हैं। हर पीढ़ी को उसके अपने समय की कसौटी पर ही समझा जा सकता है। जिस तरह स्वतंत्रता संग्राम की पीढ़ी का मूल्यांकन सोशल मीडिया के पैमाने पर नहीं किया जा सकता, उसी तरह जेन जेड को उस संसार की कसौटी पर नहीं परखा जा सकता, जहां इंटरनेट विलासिता था और कृत्रिम बुद्धिमत्ता केवल विज्ञान-कथाओं की कल्पना।

दिल्ली विश्वविद्यालय की वरिष्ठ समाजशास्त्री प्रोफेसर जे. जैनब से बातचीत के दौरान उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण बात कही - 'हर पीढ़ी अपने समय की तकनीक से प्रभावित होती है, लेकिन बहुत कम पीढ़ियां ऐसी होती हैं, जिनकी सामाजिक चेतना ही तकनीक के भीतर

क्या सचमुच जेन जेड सिर्फ़ एक नई पीढ़ी है, या फिर एक नई सभ्यता की पहली आहट? जिस युवा को हम घंटों मोबाइल में खोया हुआ समझते हैं, वह शायद एक साथ पूरी दुनिया से संवाद कर रहा है। उसकी कक्षा स्क्रीन पर है, उसके मित्र महाद्वीपों में फैले हैं और कृत्रिम बुद्धिमत्ता उसका दैनिक सहचर बन चुकी है। यह आवरणकथा किसी पीढ़ी का फैसला सुनाने नहीं, बल्कि उस बदलती दुनिया को समझने का प्रयास है, जहाँ तकनीक ने केवल जीवन नहीं, मनुष्य होने का अर्थ भी बदलना शुरू कर दिया है।

निर्मित होती है। जेन जेड शायद पहली ऐसी पीढ़ी है।'

यही टिप्पणी इस पूरी आवरण कथा का केंद्रीय सूत्र भी है। तकनीक केवल सुविधाएं नहीं बदलती, वह सोचने का ढंग भी बदल देती है। जिस बच्चे ने बचपन से हर प्रश्न का उत्तर कुछ ही सेकंड में खोज लिया हो, उसकी जिज्ञासा उस बच्चे से अलग होगी जिसने उत्तर पाने के लिए पुस्तकालयों की धूल फांकी हो।

जिस युवा ने किशोरावस्था में ही दुनिया भर के लोगों से संवाद किया हो, उसकी सामाजिक कल्पना स्वाभाविक रूप से अधिक वैश्विक होगी। और जिसने कॉलेज पहुंचने से पहले ही कृत्रिम बुद्धिमत्ता को अपना सहायक बना लिया हो, वह मशीनों को प्रतियोगी नहीं, सहयोगी के रूप में देखेगा।

यहीं भारत की कहानी और अधिक रोचक हो जाती है।

पश्चिम में जेन जेड का अध्ययन अपेक्षाकृत सरल है। वहां सामाजिक संरचनाएं अपेक्षाकृत समरूप हैं। भारत वैसा नहीं है।

यहां जयपुर का इंजीनियरिंग छात्र है, दंतेवाड़ा की आदिवासी छात्रा है, कोटा का प्रतियोगी परीक्षार्थी है, श्रीनगर का फोटोग्राफर है, बेंगलुरु का ऐप डेवलपर है और बिहार के एक छोटे कस्बे का स्नातक भी। सभी जेन जेड हैं, लेकिन उनकी जीवन-स्थितियां एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं।

फिर भी यदि आप उनके हाथों में रखी स्क्रीन को देखें, तो पाएंगे कि वे लगभग एक ही डिजिटल संसार के नागरिक हैं। यही भारत का सबसे रोचक विरोधाभास है।

सामाजिक भारत अनेक हैं। डिजिटल भारत लगभग एक है।

कुछ दशक पहले तक अवसर भूगोल की सीमाओं में कैद थे। अच्छे विश्वविद्यालय कुछ शहरों तक सीमित थे। समृद्ध पुस्तकालय कुछ चुनिंदा संस्थानों में थे। अंतरराष्ट्रीय संवाद भी विरले लोगों को उपलब्ध था।

आज तस्वीर बदल चुकी है। ज्ञान के दरवाजे पहले से कहीं अधिक खुले हैं - कम-से-कम सिद्धांततः। अब किसी छोटे कस्बे का छात्र वही व्याख्यान सुन सकता है, जिसे हार्वर्ड या ऑक्सफोर्ड का विद्यार्थी सुन रहा है। कोई कलाकार अपने कमरे से दुनिया भर के दर्शकों तक पहुंच सकता है। कोई प्रोग्रामर महानगर में बसे बिना वैश्विक कंपनी के लिए काम कर सकता है। लेकिन कहानी का दूसरा पक्ष भी उतना ही वास्तविक है। जहां अवसर बढ़े हैं, वहीं तुलना भी बढ़ी है। जहां अभिव्यक्ति आसान हुई है, वहीं निरंतर प्रदर्शन का दबाव भी। जहां मित्रों की सूची लंबी हुई है, वहीं अकेलेपन की खामोशी भी गहरी हुई है।

इसीलिए मानसिक स्वास्थ्य, डिजिटल थकान, 'फोमो' (फियर ऑफ मीसिंग आउट), साइबर बुलिंग और एल्गोरिद्मिक निर्भरता जैसे शब्द आज जेन जेड की चर्चा के केंद्र में हैं।

अब एक सुबह की कल्पना कीजिए। आरव की आंख खुलती है। वह खिड़की नहीं खोलता। वह स्क्रीन खोलता है। कुछ ही सेकंड में पूरी दुनिया उसकी हथेली पर उतर आती है। कहीं चुनाव के नतीजे आ चुके हैं। कहीं युद्ध की नई खबर है। किसी नए AI मॉडल ने तकनीकी दुनिया में हलचल मचा दी है। किसी अजनबी का एक छोटा-सा वीडियो रातोंरात करोड़ों लोगों तक पहुंच गया है। और इन्हीं सबके बीच उसके मित्र का एक साधारण-सा संदेश चमकता है -

'भाई, असाइनमेंट पूरा हुआ?'

विश्व-राजनीति, व्यक्तिगत जीवन, मनोरंजन, शिक्षा, करियर और बाज़ार - सब एक ही स्क्रीन पर एक साथ उपस्थित हैं। मानव इतिहास में शायद पहली बार मनुष्य का मानसिक संसार इतनी तीव्र गति से बहुस्तरीय हुआ है। लेकिन जेन जेड को केवल तकनीक से परिभाषित करना उतनी ही बड़ी भूल होगी, जितनी उसे केवल सोशल मीडिया से परिभाषित करना।

आखिर यही वह पीढ़ी है जिसने जलवायु परिवर्तन को लेकर वैश्विक आंदोलनों में आवाज़ उठाई। यही स्टार्टअप संस्कृति की सबसे सक्रिय सहभागी बनी। यही मानसिक स्वास्थ्य पर सबसे खुलकर बात करती है। और यही परंपराओं से सबसे अधिक प्रश्न भी पूछती है। विरोधाभास ही उसकी सबसे बड़ी पहचान है। वह वैश्विक है, लेकिन अपनी स्थानीय जड़ों से भी जुड़ना चाहती है। वह डिजिटल है, लेकिन वास्तविक संबंधों की तलाश भी करती है। वह स्वतंत्रता चाहती है, लेकिन समुदाय भी। इसीलिए उसे किसी एक परिभाषा में बांधना लगभग असंभव है। यह विशेषांक भी किसी अंतिम निष्कर्ष से नहीं, बल्कि प्रश्नों से आगे बढ़ेगा।

इंटरनेट की संतान

उन्होंने इंटरनेट का उपयोग करना नहीं सीखा... वे उसी में पैदा हुए।

दिल्ली की दोपहर अपने पूरे ताप पर है।

जंतर-मंतर पर कुछ दर्जन युवा हाथों में पोस्टर लिए खड़े हैं। पोस्टरों पर एक असामान्य-सा नाम लिखा है - 'कॉकरोच जनता पार्टी'। पहली नज़र में यह किसी व्यंग्य-नाटक का दृश्य लगता है। कुछ पत्रकार कैमरे संभाल रहे हैं। राहगीर क्षण भर रुकते हैं, तस्वीरें खींचते हैं और आगे बढ़ जाते हैं। पुलिसकर्मी भी जानते हैं कि यह कोई विशाल राजनीतिक रैली नहीं है। भीड़ इतनी कम है कि उसे उंगलियों पर गिना जा सकता है।

लेकिन उसी क्षण एक दूसरा दृश्य भी घट रहा है। वह जंतर-मंतर पर नहीं है। वह लाखों मोबाइल स्क्रीन पर है। 'एक्स' पर उसका हैशटैग ट्रेंड कर रहा है। इंस्टाग्राम पर उसके छोटे-छोटे वीडियो लाखों बार देखे जा चुके हैं। डिस्कॉर्ड और टेलीग्राम के समूहों में उसकी रणनीति पर बहस चल रही है। जो युवा जंतर-मंतर तक नहीं पहुंच सके, वे भी इस आंदोलन का हिस्सा हैं।

वे पोस्टर नहीं उठा रहे। वे नैरेटिव गढ़ रहे हैं। वे सड़क पर नहीं हैं। वे एल्गोरिद्म के भीतर मौजूद हैं। यहीं ठहरकर एक प्रश्न पूछना चाहिए।

क्या हम अब भी राजनीति को उसी भाषा में समझ रहे हैं, जिसमें बीसवीं सदी उसे समझती थी?

यदि पिछली सदी का लोकतंत्र चौक, चौराहों और सार्वजनिक सभाओं में सांस लेता था, तो इक्कीसवीं सदी का लोकतंत्र स्क्रीन, सर्वर और सोशल नेटवर्कों के बीच अपनी नई भाषा गढ़ रहा है। इसका अर्थ यह नहीं कि सड़कों का महत्व समाप्त हो गया है। लेकिन यह मान लेना भी अब पर्याप्त नहीं कि केवल सड़क पर उपस्थित व्यक्ति ही किसी आंदोलन का हिस्सा है।

जेन जेड ने 'उपस्थिति' की परिभाषा बदल दी है। उसके लिए उपस्थित होना हमेशा शारीरिक रूप से उपस्थित होना नहीं है। कभी एक पोस्ट। कभी एक वीडियो। कभी एक मीम। कभी एक लाइव स्ट्रीम। और कभी केवल एक हैशटैग भी सार्वजनिक हस्तक्षेप बन सकता है।

पुरानी पीढ़ियां इसे 'वर्चुअल एक्टिविज़्म' कहकर खारिज कर देती हैं। लेकिन क्या यह सचमुच केवल वर्चुअल है? या यह उसी तरह वास्तविक है, जैसे कभी पर्चे, भूमिगत समाचार-पत्र और साइक्लोस्टाइल घोषणापत्र

हुआ करते थे?

जयपुर का आरव उस दिन जंतर-मंतर पर नहीं था। वह अपनी ऑनलाइन इंटर्नशिप की प्रस्तुति तैयार कर रहा था। लेकिन शाम तक वह उस आंदोलन से जुड़े पांच वीडियो देख चुका था। दो पर उसने टिप्पणी लिखी। एक मित्र से बहस की। और रात तक उसके सोशल मीडिया फ़ीड में राजनीति, व्यंग्य, संविधान, बेरोज़गारी और डिजिटल अधिकार - सब एक साथ उपस्थित थे।

क्या वह उस आंदोलन का हिस्सा था? यदि उत्तर केवल उसकी भौतिक अनुपस्थिति से तय होगा, तो शायद नहीं। लेकिन यदि लोकतंत्र को विचारों के प्रवाह और भागीदारी की प्रक्रिया मानें, तो उत्तर बदल जाएगा।

यही जेन जेड का सार्वजनिक जीवन है। वह भीड़ में कम दिखाई देती है। संवाद में कहीं अधिक।

कई समाजशास्त्री इस परिवर्तन को 'नेटवर्क्ड पब्लिक स्फेयर' कहते हैं - सार्वजनिक जीवन का वह नया क्षेत्र, जहां नागरिकता केवल मतदान से नहीं, बल्कि निरंतर डिजिटल सहभागिता से भी निर्मित होती है।

युवा मीडिया शोधकर्ता संृजय मोहता ने मुझसे बातचीत के दौरान एक दिलचस्प बात कही थी - 'आज किसी आंदोलन की सफलता इस बात से कम तय होती है कि उसमें कितने लोग शामिल हुए, और इससे अधिक इस बात से कि उसके नैरेटिव ने कितनी टाइमलाइन पर जगह बनाई।'

पहली बार यह सुनकर मुझे अतिशयोक्ति लगी थी। लेकिन पिछले कुछ वर्षों की घटनाओं ने इस टिप्पणी को बार-बार पुष्ट किया है। यहीं एक दिलचस्प विरोधाभास भी दिखाई देता है।

जेन जेड पर अक्सर आरोप लगाया जाता है कि उसका 'अटेंशन स्पैन' बहुत छोटा है। वह किसी विषय पर देर तक टिक नहीं सकती। लेकिन यही पीढ़ी महीनों तक किसी सामाजिक या राजनीतिक मुद्दे पर डिजिटल अभियान चलाती रहती है। हो सकता है, वह किसी पोस्ट पर केवल दो मिनट रुके। लेकिन यदि वही दो मिनट लाखों लोग एक साथ दें, तो उसका प्रभाव किसी लंबी रैली से कम नहीं होता। संभव है कि समस्या जेन जेड के ध्यान में नहीं, बल्कि ध्यान को मापने के हमारे पुराने पैमानों में हो।

आरव के पिता अब भी नहीं समझ पाते कि उनका बेटा घंटों मोबाइल पर क्या करता रहता है। उन्हें लगता है, वह समय नष्ट कर रहा है। आरव समझाने की कोशिश करता है कि वह किसी अंतरराष्ट्रीय डिज़ाइन समुदाय से सीख रहा है, किसी AI मॉडल पर प्रयोग कर रहा है और दुनिया भर के युवाओं के साथ विचार साझा कर रहा है।

परिवर्तन का नया व्याकरण

प्रो. विमल मिंज

सहायक प्रोफेसर,
एसएसएलएनटी महिला
महाविद्यालय, धनबाद

आज भारतीय समाज एक ऐसी पीढ़ी के उदय का साक्षी है, जिसे केवल आयु-समूह के रूप में नहीं, बल्कि एक नए सभ्यतागत संक्रमण के रूप में समझा जाना चाहिए। यह है जेन जेड—वह पीढ़ी जो डिजिटल संसार में जन्मी, इंटरनेट के साथ बड़ी हुई और जिसके लिए दुनिया का पहला द्वार किसी पुस्तक का पृष्ठ नहीं, बल्कि स्मार्टफोन की स्क्रीन है। आधी रात के बाद भी, जब अधिकांश शहर और कस्बे निद्रा में होते हैं, तब भी इस पीढ़ी की दुनिया कृत्रिम बुद्धिमत्ता, सोशल मीडिया, ऑनलाइन शिक्षा, गेमिंग और वैश्विक संवाद

लेकिन पिता की नज़र में यह सब एक ही वाक्य में सिमट जाता है - 'दिन भर मोबाइल चलाता रहता है।'

दोनों अपनी-अपनी जगह गलत नहीं हैं। दोनों अलग-अलग अनुभव-लोक से बोल रहे हैं। एक ऐसी दुनिया से, जहां ज्ञान संस्थानों में रहता था। दूसरी ऐसी दुनिया से, जहां ज्ञान जेब में रहता है। यहीं जेन जेड की सबसे बड़ी विशेषता छिपी है। उसने इंटरनेट को कभी तकनीक की तरह नहीं देखा। उसने उसे पर्यावरण की तरह अनुभव किया। जैसे मछली पानी के बारे में अलग से नहीं सोचती, वैसे ही जेन जेड इंटरनेट के बारे में अलग से नहीं सोचती।

वह उसी में सीखती है। उसी में मित्र बनाती है। उसी में असफल होती है। उसी में प्रेम करती है। और कई बार... उसी के भीतर टूट भी जाती है।

इसीलिए जब पुरानी पीढ़ी सहज भाव से कहती है - 'कुछ देर के लिए ऑफलाइन हो जाओ...' - तो यह सलाह उतनी सरल नहीं होती, जितनी सुनाई देती है।

कई युवाओं के लिए ऑफलाइन होना केवल इंटरनेट से दूर होना

के माध्यम से निरंतर सक्रिय रहती है।

जेन जेड केवल सूचना का उपभोग करने वाली पीढ़ी नहीं है; यह ज्ञान, अभिव्यक्ति और अवसरों की नई संरचनाएं गढ़ रही है। इसके लिए सर्च इंजन जिज्ञासा का पहला पड़ाव है और एल्गोरिद्म डिजिटल जीवन की नई भाषा। यह पीढ़ी पारंपरिक सीमाओं से आगे बढ़कर शिक्षा, उद्यमिता, रोजगार और रचनात्मकता के नए आयाम तलाश रही है। साथ ही, यह बदलती वैश्विक अर्थव्यवस्था और डिजिटल संस्कृति को भी नए सिरे से परिभाषित कर रही है। तकनीकी दक्षता, वैश्विक दृष्टि और त्वरित अनुकूलन इसकी सबसे बड़ी पहचान बनते जा रहे हैं।

निस्संदेह, डिजिटल निर्भरता, सूचना-अधिभार और मानसिक स्वास्थ्य जैसी चुनौतियां भी इसके सामने हैं, किंतु इन्हीं के बीच यह पीढ़ी भविष्य की अर्थव्यवस्था, नवाचार और सामाजिक परिवर्तन की प्रमुख वाहक बनकर उभर रही है। जेन जेड केवल नई पीढ़ी नहीं, बल्कि उस बदलती दुनिया का संकेत है, जहां तकनीक और मानवीय संभावनाएं मिलकर भविष्य का नया व्याकरण रच रही हैं।

कभी किसी आंदोलन की ताकत उसकी भीड़ से मापी जाती थी, आज उसकी गूंज स्क्रीन पर दिखाई देती है। सड़कों से अधिक हैशटैग बोलते हैं, पोस्टर से अधिक नैरेटिव असर डालते हैं और उपस्थिति का अर्थ केवल किसी चौक पर खड़ा होना नहीं रह गया है। जेन जेड ने सार्वजनिक जीवन की भाषा बदल दी है। यह अध्याय उसी नई डिजिटल नागरिकता की पड़ताल है, जहाँ इंटरनेट केवल माध्यम नहीं, सामाजिक और राजनीतिक चेतना का नया परिवेश बन चुका है।

नहीं है। वह कुछ समय के लिए अपने सामाजिक जीवन, अपनी पढ़ाई, अपने काम और अपने पेशेवर नेटवर्क से भी दूर हो जाना है।

यहीं 'डिजिटल लत' और 'डिजिटल जीवन' के बीच की रेखा धुंधली होने लगती है। और शायद... यहीं से जेन जेड को समझने का अगला दरवाजा खुलता है।

लेकिन यह रेखा धुंधली हुई कैसे? उत्तर खोजने के लिए हमें एक कदम और पीछे जाना होगा। यदि जेन जेड ने इंटरनेट को तकनीक नहीं, बल्कि अपने परिवेश की तरह अनुभव किया, तो यह अनुभव कब शुरू हुआ? कॉलेज में? स्कूल में? नहीं।

उससे भी बहुत पहले। बचपन में।

हर पीढ़ी की पहचान उसके बचपन से होती है। किसी पीढ़ी की स्मृतियों में लालटेन की रोशनी है। किसी के बचपन में ट्रांजिस्टर की आवाज़। किसी की स्मृतियों में रविवार की सुबह रामायण और महाभारत का इंतज़ार। किसी के लिए दूरदर्शन का रंगीन प्रसारण ही आधुनिकता का पहला अनुभव था।

लेकिन जेन जेड की पहली स्मृति क्या है? शायद किसी स्मार्टफोन की स्क्रीन। शायद टचस्क्रीन पर उंगली फेरने का पहला अनुभव। शायद किसी वीडियो को रोककर दोबारा चलाने की सुविधा। और शायद... वह क्षण, जब किसी बच्चे ने 'मां' शब्द ठीक से बोलने से पहले 'यूट्यूब' का नाम सुन लिया। यह सुनने में अतिशयोक्ति लग सकती है। लेकिन पिछले दस वर्षों के किसी भी पारिवारिक एलबम को पलटकर देखिए। आप पाएंगे कि बच्चों के हाथों में खिलौनों से पहले मोबाइल दिखाई देने लगे हैं। यह केवल तस्वीरों का परिवर्तन नहीं है। यह बचपन की संरचना का परिवर्तन है।

शिक्षाशास्त्र का एक पुराना सिद्धांत कहता है कि मनुष्य के शुरुआती अनुभव ही उसके सोचने की बुनियादी संरचना बनाते हैं। यदि यह मान लें, तो जेन जेड का संज्ञानात्मक संसार पहले की किसी भी पीढ़ी से अलग होना स्वाभाविक है।

कल्पना कीजिए। एक बच्चा किसी पक्षी का नाम पूछता है। 1995 में उसके पिता शायद पुस्तक निकालते। 2005 में संभवतः किसी विश्वकोश का सहारा लेते। 2026 में? मोबाइल कैमरा पक्षी की तस्वीर लेता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता कुछ ही सेकंड में उसका नाम बता देती है। उसकी आवाज़ सुना देती है। उसका प्रवास दिखा देती है। उससे जुड़ी जानकारी खोल देती है। और यदि बच्चा चाहे, तो उसी क्षण दुनिया के किसी दूसरे बच्चे से उस पक्षी पर बातचीत भी कर सकता है।

प्रश्न वही है। लेकिन उत्तर तक पहुंचने की पूरी प्रक्रिया बदल चुकी है। यही जेन जेड की दुनिया है। उसके लिए ज्ञान कोई स्थिर संग्रह नहीं। एक सतत प्रवाह है। पुस्तकालय कोई इमारत नहीं। एक डिजिटल अनुभव है। वह जानकारी को जमा करने से अधिक उसे खोजने की क्षमता पर भरोसा करती है। यही कारण

है कि पुरानी पीढ़ी को अक्सर लगता है कि नई पीढ़ी कम याद रखती है। संभव है, यह आंशिक रूप से सच हो। लेकिन शायद इसलिए कि उसे पहले की तरह सब कुछ याद रखने की आवश्यकता ही नहीं रही।

एक समय था, जब पूरे परिवार के टेलीफोन नंबर स्मृति में अंकित रहते थे। आज अधिकांश लोग अपने सबसे निकट के परिजनों का मोबाइल नंबर भी याद नहीं रखते। जब स्मृति का एक हिस्सा उपकरणों को सौंप दिया जाता है, तो मस्तिष्क नई क्षमताएं विकसित करता है - विश्लेषण, संयोजन, त्वरित निर्णय और अनेक स्रोतों से मिली सूचनाओं के बीच संबंध स्थापित करने की क्षमता।

ज्ञान कम नहीं हुआ है। उसका स्वरूप बदल गया है। और यही परिवर्तन सबसे स्पष्ट रूप से शिक्षा में दिखाई देता है। जब आरव से पूछा गया कि पिछले महीने उसने सबसे अधिक किस शिक्षक से सीखा, तो उसका उत्तर किसी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर का नाम नहीं था... आरव कुछ क्षण सोचता है। फिर मुस्कुराकर कहता है - 'एक जापानी डिज़ाइनर, एक कनाडाई डेटा वैज्ञानिक और एक भारतीय यूट्यूबर... पिछले महीने मैंने सबसे ज़्यादा इन्हीं तीन लोगों से सीखा। वे शायद कभी एक-दूसरे से मिले भी नहीं होंगे। लेकिन मेरे लिए यही विश्वविद्यालय हैं।'

यही जेन जेड की दुनिया है। उसकी कक्षा चौबीस घंटे खुली रहती है। उसकी उपस्थिति अनिवार्य नहीं। उसकी परीक्षा कोई संस्थान नहीं लेता। फिर भी वह लगातार सीख रहा है। यही परंपरागत शिक्षा-दृष्टि के सामने खड़ी सबसे बड़ी चुनौती है। इसका अर्थ यह नहीं कि विद्यालय और विश्वविद्यालय अप्रासंगिक हो जाएंगे। बिल्कुल नहीं। लेकिन ज्ञान पर उनका एकाधिकार अब पहले जैसा नहीं रहा।

एक समय था, जब संस्थान ज्ञान के मुख्य प्रवेश-द्वार थे। आज वे अनेक द्वारों में से एक हैं। यह परिवर्तन केवल तकनीकी नहीं है। यह सामाजिक परिवर्तन है। और आने वाले वर्षों में इसका प्रभाव शिक्षा, रोजगार और विश्वविद्यालयों - तीनों पर दिखाई देगा।

यहीं एक और रोचक विरोधाभास सामने आता है। यही वह पीढ़ी है, जिसे अक्सर 'ध्यान भंग होने वाली पीढ़ी' कहा जाता है। लेकिन यही पीढ़ी एक ही दिन में अनेक स्रोतों से सीखती भी है। यात्रा के दौरान पॉडकास्ट सुनती है। वीडियो देखकर खाना बनाना सीखती है। ऑनलाइन समुदायों से प्रोग्रामिंग सीखती है। AI से अपनी भाषा और कोड सुधारती है। और रात को किसी विदेशी विश्वविद्यालय का व्याख्यान भी सुन लेती है।

क्या यह बिखराव है? या सीखने का नया प्रतिमान?

संभवतः दोनों। और शायद इसी कारण जेन जेड को किसी एक परिभाषा में बांधना कठिन है। वह हर निश्चित निष्कर्ष को अधूरा बना देती है। लेकिन हर परिवर्तन अपने साथ एक नई चुनौती भी लाता है। सूचना का विस्फोट, ज्ञान की गारंटी नहीं है। एल्गोरिद्म सुविधा देते हैं। लेकिन वे चयन भी करते हैं।

आप क्या देखेंगे... किससे सहमत होंगे... किससे असहमत होंगे... कई बार इसका पहला निर्णय आप नहीं, बल्कि मशीन कर रही होती है। यहीं एक नया प्रश्न जन्म लेता है।

क्या जेन जेड पहले से अधिक स्वतंत्र है? या... पहले से कहीं अधिक अदृश्य संरचनाओं द्वारा संचालित?

यह प्रश्न केवल तकनीक का नहीं है। यह लोकतंत्र का भी है। यह केवल शिक्षा का नहीं। स्वतंत्र इच्छा का भी है। अमेरिकी मीडिया सिद्धांतकार मार्शल मैकलुहान ने कई दशक पहले लिखा था - 'पहले हम अपने उपकरणों को गढ़ते हैं, फिर वही उपकरण हमें गढ़ने लगते हैं।'

संभवतः जेन जेड पहली ऐसी पीढ़ी है जिसने इस विचार को सबसे प्रत्यक्ष रूप से जिया है। उसने स्मार्टफोन बनाया नहीं। उसे विरासत में पाया। लेकिन उसी स्मार्टफोन ने उसकी भाषा, उसके संबंधों, उसकी राजनीति, उसकी कल्पना और उसकी महत्वाकांक्षाओं को आकार देना शुरू कर दिया।

और यहीं हमारी कहानी एक नए मोड़ पर पहुंचती है। यदि बचपन बदल गया... यदि सीखने का ढांचा बदल गया... यदि सार्वजनिक जीवन बदल गया... तो क्या सोचने का ढंग भी बदल गया?

क्या जेन जेड दुनिया को उसी तरह देखती है, जैसे उसके माता-पिता देखते थे? या उसके मस्तिष्क ने समय, सूचना, संबंध और पहचान को समझने की एक नई संरचना विकसित कर ली है? अब हमें इंटरनेट से आगे जाना है। अब हमें उस परिवर्तन को समझना है, जो स्क्रीन पर नहीं... मानव मस्तिष्क के भीतर घटित हो रहा है।

दूसरा दिमाग

अटेंशन इकोनॉमी, एल्गोरिद्म और बदलती हुई चेतना

आरव के सामने लैपटॉप खुला है।

उसे कॉलेज के लिए एक प्रेजेंटेशन तैयार करना है। स्क्रीन पर PowerPoint खुला है। साथ ही ChatGPT भी। दाएं कोने में Spotify पर धीमा संगीत चल रहा है। मोबाइल पर व्हाट्सऐप के संदेश लगातार आ रहे हैं। बीच-बीच में इंस्टाग्राम की नोटिफिकेशन चमक उठती है। अचानक एक मित्र का वीडियो कॉल आता है। दो मिनट बातचीत होती है। वह वापस स्लाइड पर लौटता है। फिर YouTube खोलकर किसी विदेशी प्रोफेसर का पांच मिनट का व्याख्यान देखता है।

उसके बाद AI से पूछता है- ' कैन यू इंप्रुव दिस प्रेजेंटेशन?' करीब चालीस मिनट बाद उसका काम पूरा हो जाता है। आरव को लगता है कि उसने पूरे समय एक ही काम किया। यदि उसके पिता यह दृश्य देखते, तो शायद कहते - 'चालीस मिनट में तुमने एक मिनट भी पढ़ाई नहीं की।'

दोनों अपने-अपने अनुभव से सही हैं। लेकिन दोनों की 'पढ़ाई' की परिभाषा अलग है। हमारी पीढ़ी ने एकाग्रता को रेखीय प्रक्रिया की तरह सीखा था। एक मेज। एक पुस्तक। एक विषय। एक घंटा। यही अध्ययन था।

जेन जेड की दुनिया में यह मॉडल धीरे-धीरे बदल गया है। उसकी एकाग्रता रेखीय नहीं... नेटवर्क आधारित है। वह एक स्रोत से दूसरे स्रोत तक लगातार जाती है। फिर वापस लौटती है। फिर तीसरे स्रोत से जुड़ती है। यह केवल आदत नहीं। यह डिजिटल परिवेश द्वारा निर्मित संज्ञानात्मक व्यवहार है।

यहीं एक नया शब्द सामने आता है - अटेंशन इकोनॉमी। कुछ वर्ष पहले तक यह शब्द केवल तकनीकी कंपनियों और विज्ञापन जगत तक सीमित था। आज यह मनोविज्ञान, शिक्षा, राजनीति और लोकतंत्र - सभी की चर्चा का विषय है। क्योंकि इक्कीसवीं सदी का सबसे मूल्यवान संसाधन केवल तेल, सोना या डेटा नहीं है। सबसे मूल्यवान संसाधन है- मानव का ध्यान। जिसने आपका ध्यान जीत लिया... उसने आपका समय जीत लिया। जिसने आपका समय जीत लिया... उसने आपके निर्णयों को प्रभावित करने की संभावना भी प्राप्त कर ली।

सिलिकॉन वैली में प्रोडक्ट डिजाइनर के रूप में कार्य कर चुके शुभंकर सेनगुप्ता कहते हैं- 'यदि किसी डिजिटल सेवा के लिए आप भुगतान नहीं कर रहे, तो संभव है कि उत्पाद आप स्वयं हों।'

यह वाक्य सुनने में कठोर लगता है। लेकिन आधुनिक डिजिटल अर्थव्यवस्था का बड़ा हिस्सा इसी सिद्धांत पर खड़ा है। सोशल मीडिया कंपनियां आपका समय खरीदती नहीं। वे आपका ध्यान आकर्षित करती हैं। फिर उसी ध्यान को विज्ञापन और डेटा-आधारित अर्थव्यवस्था में बदल देती हैं। आप ग्राहक भी हैं। और कई अर्थों में... उत्पाद भी।

इसीलिए जेन जेड का सबसे बड़ा संघर्ष शायद सूचना से नहीं... ध्यान से है। आज का युवा जानकारी के अभाव में नहीं जी रहा।

वह जानकारी की बाढ़ में जी रहा है। समस्या यह नहीं कि उसे क्या पढ़ना है। समस्या यह है कि उसे क्या छोड़ देना है। मेरे मित्र और पेशे से मनोचिकित्सक डॉ. एस के सिंह ने एक बार यूं ही बातचीत के क्रम में कहा था - 'आज के किशोरों की सबसे बड़ी समस्या जानकारी की कमी नहीं, बल्कि मानसिक शोर है।' दरअसल, यह बातचीत पारिवारिक थी और 17 वर्षीय मेरे बेटे के संबंध में थी। डॉ सिंह का कहा गया यह वाक्य मेरे साथ लंबे समय तक रहा। क्योंकि पहली बार किसी ने समस्या का सही नाम लिया था - मानसिक शोर।

शोर। बाहर भी। भीतर भी।

कल्पना कीजिए... सुबह आंख खुलते ही आपके सामने - दस समाचार। बारह संदेश। पांच वीडियो। तीन ई-मेल। दो राजनीतिक बहसें। एक ब्रेकिंग न्यूज़। एक मित्र की सफलता। दूसरे की विदेश यात्रा। तीसरे की सगाई। चौथे की नई नौकरी। और पांचवें की उदासी। यह सब... सिर्फ पांच मिनट के भीतर। मानव मस्तिष्क का विकास लाखों वर्षों में हुआ है। लेकिन इतनी तीव्र सूचना-प्रवाह उसके विकासक्रम का कभी हिस्सा नहीं रही।

यहीं से जेन जेड का मानसिक संसार पिछली पीढ़ियों से अलग दिखाई देने लगता है। क्या इसका अर्थ यह है कि उसकी एकाग्रता समाप्त हो गई है? संभवतः नहीं। शायद उसकी दिशा बदल गई है। वह किसी पुस्तक पर तीन घंटे लगातार न टिके। लेकिन वही युवा किसी गेम की रणनीति पर पांच घंटे लगा सकता है। किसी वीडियो एडिटिंग प्रोजेक्ट पर पूरी रात काम कर सकता है। किसी स्टार्टअप आइडिया पर महीनों लगा रह सकता है। समस्या ध्यान की अनुपस्थिति नहीं है।

ध्यान के पुनर्वितरण की है। यहीं शिक्षा-व्यवस्था सबसे अधिक असहज दिखाई देती है। वह अब भी उस विद्यार्थी की कल्पना करती है, जो चालीस मिनट तक केवल शिक्षक को सुनता रहे। जबकि छात्र का मस्तिष्क एक बिल्कुल अलग डिजिटल पारिस्थितिकी में विकसित हुआ है। यह केवल अनुशासन का संघर्ष नहीं। दो अलग-अलग संज्ञानात्मक संस्कृतियों का संघर्ष है।

आरव का छोटा भाई आर्यन केवल दस वर्ष का है। उसे गणित का एक प्रश्न समझ में नहीं आता। वह सबसे पहले AI से पूछता है। उत्तर कठिन लगता है, तो YouTube खोलता है। फिर भी बात न बने, तो मित्र को वीडियो कॉल करता है। और अंत में... विद्यालय के शिक्षक के पास जाता है।

कुछ वर्ष पहले यही क्रम बिल्कुल उल्टा था। पहले शिक्षक। फिर पुस्तक। फिर मित्र। और अंत में शायद पुस्तकालय। सिर्फ साधन नहीं बदले। समस्या हल करने की पूरी मानवीय प्रक्रिया बदल गई है। और संभवतः आने वाले भारत की सबसे बड़ी सामाजिक कहानी

भी यही होगी।

यहीं एक कठिन प्रश्न सामने खड़ा होता है। क्या हम वास्तव में जेन जेड को 'ध्यान भंग होने वाली पीढ़ी' कह रहे हैं... या इसलिए असहज हैं कि उसने ध्यान देने का हमारा पारंपरिक तरीका स्वीकार करने से इनकार कर दिया है? यह प्रश्न असुविधाजनक है। लेकिन हर युग की पहचान उसके असुविधाजनक प्रश्नों से ही होती है। और शायद जेन जेड का सबसे बड़ा प्रश्न भी यही है - क्या डिजिटल युग में मनुष्य का मस्तिष्क अपने काम करने का तरीका बदल रहा है?

यदि उत्तर 'हाँ' है... तो उसके परिणाम केवल शिक्षा तक सीमित नहीं रहेंगे। वे लोकतंत्र को भी बदलेंगे। अर्थव्यवस्था को भी। रिश्तों को भी। और शायद... प्रेम को भी। लेकिन यदि ध्यान इक्कीसवीं सदी की सबसे मूल्यवान पूंजी है... तो अगला प्रश्न स्वाभाविक है - उसे नियंत्रित कौन कर रहा है?

यहीं से कहानी मनोविज्ञान से निकलकर एल्गोरिद्म की दुनिया में प्रवेश करती है। जब आरव सुबह इंस्टाग्राम खोलता है, तो उसे दिखाई देने वाला पहला वीडियो संयोग नहीं होता। यूट्यूब का अगला सुझाव भी आकस्मिक नहीं होता। नेटफ्लिक्स, स्पॉटिफाई, अमेज़न, एक्स और स्नैपचैट - लगभग हर डिजिटल मंच उसके पिछले व्यवहार, उसकी रुचियों, उसके ठहरने के समय और उसके क्लिकों को पढ़ चुका होता है।

वे केवल यह नहीं जानते कि आरव ने क्या देखा। वे यह अनुमान भी लगाने लगे हैं कि वह आगे क्या देखना चाहेगा।

यही आधुनिक एल्गोरिद्मिक संसार की सबसे बड़ी शक्ति है। वह हमारे निर्णयों को आदेश देकर नहीं... विकल्प चुनकर प्रभावित करता है। बीसवीं शताब्दी की सबसे बड़ी लड़ाइयां भूभागों पर लड़ी गई थीं। इक्कीसवीं शताब्दी की सबसे बड़ी प्रतिस्पर्धा मानव मस्तिष्क के भीतर उपलब्ध कुछ सेकंड के ध्यान पर लड़ी जा रही है।

हर नोटिफिकेशन एक दस्तक है। हर रील एक निमंत्रण। हर स्क्रॉल एक नया मोड़। और हर रिकमेंडेशन एक अदृश्य संपादक... जो तय कर रहा है कि आपका अगला विचार किसके प्रभाव में जन्म लेगा। हम अक्सर सोचते हैं कि हम सोशल मीडिया का उपयोग कर रहे हैं। वास्तविकता कहीं अधिक जटिल है। सोशल मीडिया भी लगातार हमें पढ़ रहा है। कुछ वर्ष पहले भारत की विशाल बायोमेट्रिक पहचान प्रणाली 'आधार' (Aadhaar) के मुख्य विचारक और वास्तुकार नंदन नीलेकणि ने एक तकनीकी सम्मेलन में मजाकिया लहजे में कहा था - 'हम मशीनों को मनुष्य जैसा बनाना चाहते थे। अब चुनौती यह है कि कहीं मनुष्य मशीनों जैसा व्यवहार करने न लगे।' सभागार में हल्की-सी हंसी गूंजी। लेकिन उस हंसी के भीतर एक गहरी बेचैनी भी थी। क्या सचमुच ऐसा हो रहा है?

आरव का एक छोटा-सा प्रयोग देखिए। वह केवल पांच मिनट के लिए इंस्टाग्राम खोलता है। पहली रील क्रिकेट की। दूसरी कृत्रिम बुद्धिमत्ता की। तीसरी हास्य वीडियो। चौथी किसी विदेशी विश्वविद्यालय की छात्रवृत्ति पर। पांचवीं फिर हास्य। छठी किसी उद्यमी की सफलता की कहानी। सातवीं मानसिक स्वास्थ्य पर। आठवीं एक विज्ञापन।

दस मिनट बाद... उसे याद भी नहीं रहता कि उसने ऐप आखिर खोला किसलिए था। क्या यह उसकी असावधानी है? या किसी अत्यंत परिष्कृत डिज़ाइन की सफलता? व्यवहार-विज्ञान में एक शब्द है - डोपामिन लूप। जब मस्तिष्क को कोई नई, अप्रत्याशित या संभावित रूप से रोचक सूचना मिलती है, तो वह रासायनिक स्तर पर प्रतिक्रिया देता है।

इसीलिए अगली रील... अगला वीडियो... अगला नोटिफिकेशन... हमें बार-बार अपनी ओर खींचते हैं। ध्यान दीजिए। कोई भी डिजिटल मंच आपसे कभी नहीं कहता - 'आज के लिए इतना पर्याप्त है। अब थोड़ी देर बाहर टहल आइए।' क्योंकि डिजिटल अर्थव्यवस्था का लक्ष्य आपका संतुलन नहीं है। उसका लक्ष्य आपका समय है। और समय तक पहुंचने का सबसे विश्वसनीय रास्ता... आपके ध्यान से होकर गुजरता है।

यहीं जेन जेड का सबसे बड़ा विरोधाभास दिखाई देता है। वह इतिहास की सबसे अधिक कनेक्टेड पीढ़ी है। और शायद... सबसे अधिक डिस्ट्रैक्टेड भी। वह हजारों लोगों से जुड़ी हुई है। लेकिन कई बार स्वयं से दूर होती चली जाती है। उसके पास अभिव्यक्ति के अनगिनत मंच हैं। लेकिन मौन के क्षण लगातार कम हो रहे हैं। वह हर समय संवाद में है। लेकिन अपने भीतर का संवाद कई बार अधूरा छोड़ देती है। मनोवैज्ञानिक इसे केवल तकनीक का प्रश्न नहीं मानते।

वे इसे संज्ञानात्मक पारिस्थितिकी का प्रश्न कहते हैं। अर्थात वह मानसिक वातावरण, जिसमें मनुष्य का मस्तिष्क प्रतिदिन सांस लेता है। यदि पूरा वातावरण लगातार उत्तेजनाओं से भरा हो, तो मस्तिष्क भी धीरे-धीरे उसी के अनुरूप स्वयं को ढालने लगता है। शायद इसी कारण जेन जेड का धैर्य, निर्णय लेने की गति, जोखिम उठाने का तरीका और सीखने की शैली पहले की पीढ़ियों से अलग दिखाई देती है।

ये गुण जन्मजात नहीं हैं। ये उनके वातावरण से निर्मित हुए हैं। लेकिन कहानी का दूसरा पक्ष भी उतना ही महत्वपूर्ण है। यही एल्गोरिद्म आरव को जयपुर से उठाकर दुनिया के सर्वश्रेष्ठ डिज़ाइनरों तक पहुंचाते हैं। यही इंटरनेट किसी ग्रामीण छात्रा को विश्वस्तरीय व्याख्यान उपलब्ध कराता है। यही AI किसी दृष्टिबाधित विद्यार्थी को पहले से कहीं अधिक स्वतंत्र बना सकता है। और यही डिजिटल मंच किसी कलाकार को बिना किसी बड़े स्टूडियो के लाखों दर्शकों तक पहुंचा देता है।

अर्थात... जो तकनीक ध्यान को बांध सकती है... वही अवसरों के नए द्वार भी खोल सकती है। समस्या तकनीक नहीं है। समस्या उसके साथ मनुष्य के संबंध की है। यहीं इस पूरी चर्चा का शायद सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष सामने आता है - तकनीक कभी तटस्थ नहीं होती। वह मनुष्य के व्यवहार को सूक्ष्म रूप से पुनर्गठित करती है।

हर युग में ऐसा हुआ है। मुद्रण मशीन ने पढ़ने का ढंग बदला। रेलवे ने दूरी की कल्पना बदली। टेलीविजन ने परिवार का अवकाश बदला। इंटरनेट ने संवाद का स्वरूप बदल दिया। और कृत्रिम बुद्धिमत्ता शायद पहली ऐसी तकनीक है, जो केवल काम करने का तरीका नहीं... सोचने का तरीका भी बदलने लगी है। इसीलिए जेन जेड को केवल 'मोबाइल में खोई हुई पीढ़ी' कह देना सबसे बड़ी भूल होगी। वह खोई हुई नहीं है। वह एक ऐसे संक्रमणकाल में जी रही है, जहां मनुष्य और मशीन का संबंध पहली बार प्रतिस्पर्धा से आगे बढ़कर साझेदारी का रूप ले रहा है।

उसके सामने जितने अवसर हैं... उतनी ही उलझनें भी। उसके पास जितनी सूचना है... उतनी ही अनिश्चितता भी। उसके पास जितने विकल्प हैं... उतने ही निर्णय भी।

ज्ञान का नया पता

जब कक्षा का पता बदल गया...

कोटा। रात के साढ़े ग्यारह बजे हैं।

तलवंडी की एक संकरी गली में पांच मंजिला हॉस्टल की तीसरी मंजिल पर कमरा नंबर 307 की बत्ती अब भी जल रही है। बीस वर्षीय राघव के सामने भौतिकी की मोटी पुस्तक खुली है। मेज पर एनसीईआरटी की किताबें हैं। कोचिंग के नोट्स हैं। सूत्रों से भरी कॉपियां हैं।

देखने वाले को लगेगा कि वह किसी सामान्य प्रतियोगी परीक्षार्थी की तरह पढ़ रहा है। लेकिन दृश्य अधूरा है। किताबों के बीच एक टैबलेट रखा है। मोबाइल स्टैंड पर लगा फोन किसी ऑनलाइन शिक्षक का लाइव सत्र दिखा रहा है। टैबलेट पर ChatGPT खुला है। दूसरी विंडो में Reddit का एक समूह है, जहां भारत, सिंगापुर और कनाडा के विद्यार्थी एक ही भौतिकी के प्रश्न पर चर्चा कर रहे हैं। राघव के लिए यह अलग-अलग माध्यम नहीं हैं। यही उसकी कक्षा है।

करीब दो हजार किलोमीटर दूर... श्रीनगर। ज़ोया अपनी छत पर खड़ी डल झील की ओर कैमरा ताने हुए है। अगले सप्ताह उसे विजुअल स्टोरीटेलिंग पर प्रोजेक्ट जमा करना है। उसका शिक्षक श्रीनगर विश्वविद्यालय में है। लेकिन उसकी प्रेरणा? टोक्यो का एक फोटोग्राफर। रंगों की समझ? एक इटैलियन कलाकार। वीडियो संपादन? एक भारतीय कंटेंट क्रिएटर। AI आधारित फोटो-रीस्टोरेशन? एक अमेरिकी प्रशिक्षक।

जब उससे पूछा गया - 'तुम्हारा शिक्षक कौन है?' वह कुछ क्षण मुस्कुराई। फिर बोली - 'सर... एक नहीं हैं।'

इसी समय... चेन्नई। आईआईटी मद्रास के

कभी ज्ञान तक पहुंचने के लिए विद्यार्थी विद्यालय, पुस्तकालय और गुरु के पास जाता था। आज ज्ञान स्वयं उसकी हथेली तक पहुंच रहा है। एक स्क्रीन पर दुनिया के सर्वश्रेष्ठ शिक्षक, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और वैश्विक सीखने वाले समुदाय साथ मौजूद हैं। यह केवल शिक्षा में तकनीकी बदलाव नहीं, बल्कि सीखने की पूरी संस्कृति का पुनर्जन्म है। यह अध्याय उसी नई पाठशाला की कहानी है, जिसकी दीवारें ईंट-पत्थर से नहीं, बल्कि नेटवर्क, जिज्ञासा और निरंतर सीखने की इच्छा से निर्मित होती हैं।

पास एक AI इनोवेशन लैब में इंटर्नशिप कर रही मीरा अपने लैपटॉप पर कोड लिख रही है। समस्या आती है। वह पहले वरिष्ठ इंजीनियर के पास नहीं जाती। पहले GitHub। फिर Stack Overflow। फिर ChatGPT। फिर ओपन-सोर्स समुदाय। और अंत में... अपने मेंटर के पास। समस्या वही है।

लेकिन उसे हल करने का क्रम बदल चुका है। भारत बदल रहा है। लेकिन उससे भी अधिक बदल रही है - भारत में सीखने की प्रक्रिया।

एक समय था, जब ज्ञान का एक निश्चित पता हुआ करता था। विद्यालय। विश्वविद्यालय। पुस्तकालय। प्रयोगशाला। गुरु। ज्ञान वहीं रहता था। विद्यार्थी वहां तक पहुंचता था।

अब... ज्ञान ने अपना स्थायी पता छोड़ दिया है। वह यात्रा करता है। मोबाइल से मोबाइल। सर्वर से सर्वर। महाद्वीप से महाद्वीप। एक वीडियो से दूसरे पॉडकास्ट तक। एक AI मॉडल से एक मानव शिक्षक तक।

अब विद्यार्थी ज्ञान तक नहीं जाता। ज्ञान विद्यार्थी तक आ जाता है। भारतीय परंपरा में गुरु का स्थान सर्वोच्च रहा है। उपनिषदों से नालंदा और तक्षशिला तक शिक्षा केवल सूचना का हस्तांतरण नहीं थी। वह व्यक्तित्व-निर्माण की प्रक्रिया थी। गुरु केवल पढ़ाते नहीं थे। जीवन जीना भी सिखाते थे। इसीलिए भारतीय शिक्षा परंपरा का केंद्र संबंध था।

आज जेन जेड की शिक्षा का केंद्र नेटवर्क है। संबंध समाप्त नहीं हुए। लेकिन उनका स्वरूप बदल गया है। अब एक विद्यार्थी के अनेक गुरु हो सकते हैं। और वे एक-दूसरे को जानते भी नहीं। हार्वर्ड के शिक्षाविद् टोनी वैग्नर ने लिखा है - 'भविष्य की सबसे महत्वपूर्ण क्षमता यह नहीं होगी कि विद्यार्थी क्या जानते हैं, बल्कि यह होगी कि वे कितनी तेजी से नया सीख सकते हैं।' शायद यही वाक्य इक्कीसवीं सदी की शिक्षा का सबसे संक्षिप्त परिचय है।

यदि यह बात सही है, तो संभव है कि जेन जेड उस भविष्य का पूर्वाभ्यास पहले ही शुरू कर चुकी है। दंतेवाड़ा के एक छोटे सरकारी विद्यालय की छात्रा कविता को देखिए। उसके विद्यालय में विज्ञान की प्रयोगशाला सीमित है। इंटरनेट की गति भी बहुत तेज़ नहीं। लेकिन उसके पास एक सस्ता एंड्रॉयड फोन है। और उससे भी बड़ी चीज़ - एक अथाह जिज्ञासा। रात को घर के बाहर बैठकर वह विज्ञान के वीडियो देखती है। कभी अंग्रेज़ी समझ में नहीं आती।तो वह AI से कहती है - 'इसे आसान हिंदी में समझाओ।' कुछ ही क्षण बाद वही अवधारणा उसकी अपनी भाषा में उसके सामने होती है।

दादा को यह किसी जादू से कम नहीं लगता। कविता के लिए... यह सामान्य जीवन है। यहीं शायद हमें एक महत्वपूर्ण बात स्वीकार करनी होगी। शिक्षा की सबसे बड़ी क्रांति केवल कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने नहीं लाई। सबसे बड़ा परिवर्तन इस बात ने किया है कि ज्ञान अब पहले की तुलना में कहीं अधिक लोकतांत्रिक रूप से उपलब्ध है।

पहली बार किसी महानगर का छात्र और किसी छोटे गांव का छात्र एक ही व्याख्यान सुन सकते हैं। एक ही AI मॉडल से प्रश्न पूछ सकते हैं। एक ही वैश्विक समुदाय का हिस्सा बन सकते हैं। अवसरों की असमानता अभी भी मौजूद है। लेकिन ज्ञान तक पहुंच की असमानता पहले की तुलना में निश्चित रूप से कम हुई है। और यहीं एक नया प्रश्न जन्म लेता है।

यदि हर विद्यार्थी का शिक्षक अलग है...यदि हर विद्यार्थी का सीखने का मार्ग अलग है... यदि हर विद्यार्थी का पाठ्यक्रम धीरे-धीरे वैयक्तिक होता जा रहा है... तो विद्यालय की भूमिका क्या होगी?

क्या विद्यालय केवल जानकारी देने वाले संस्थान बने रहेंगे? या वे मानवीय संवाद, सहयोग, अनुशासन और सह-अस्तित्व के ऐसे केंद्र बनेंगे, जिनकी आवश्यकता डिजिटल युग में पहले से भी अधिक होगी? क्योंकि अंततः शिक्षा का उद्देश्य केवल उत्तर देना नहीं होता। वह सही प्रश्न पूछना भी सिखाती है।

और शायद... इक्कीसवीं सदी में शिक्षा की सबसे बड़ी चुनौती जानकारी देना नहीं होगी। विवेक विकसित करना होगी। यही वह अंतर है, जो आने वाले भारत का भविष्य तय करेगा।

काम का नया अर्थ

जब नौकरी जीवन का केंद्र नहीं रही...

सुबह के नौ बजे हैं।

मुंबई के अंधेरी पश्चिम में एक को-वर्किंग स्पेस धीरे-धीरे जाग रहा है। कॉफी मशीन की आवाज़। लैपटॉप के खुलने की ध्वनि। हेडफोन लगाए युवाओं के बीच एक अजीब-सी शांति। यहां कोई पंचिंग मशीन नहीं है। कोई उपस्थिति रजिस्टर नहीं। कोई केबिन नहीं, जिसके बाहर लिखा हो - 'जनरल मैनेजर'।

एक कोने में बैठा 24 वर्षीय शुभम वीडियो एडिट कर रहा है। सामने बैठी उसकी सहकर्मी स्पेन के एक क्लाइंट के साथ ऑनलाइन मीटिंग में है। दूसरी मेज पर एक युवती दक्षिण कोरिया की कंपनी के लिए यूज़र इंटरफेस डिज़ाइन कर रही है। कमरे में मौजूद चार लोगों के चार अलग-अलग नियोक्ता हैं। लेकिन कार्यस्थल एक ही है।

बीसवीं शताब्दी का कार्यालय ऐसा नहीं था। उसमें दीवारें थीं। पदक्रम था। समय निश्चित था। और अधिकांश लोगों के लिए एक ही नौकरी पूरे जीवन की पहचान बन जाती थी।

जेन जेड उस दुनिया में बड़ी नहीं हुई। उसने अपने माता-पिता को आर्थिक उदारीकरण, आउटसोर्सिंग, स्टार्टअप, गिग इकॉनमी, वर्क फ्रॉम होम और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के बीच बदलती दुनिया से जूझते देखा है। उसने यह भी देखा है कि स्थायी नौकरी भी हमेशा स्थायी नहीं रहती। शायद इसी कारण वह करियर को अपने माता-पिता की तरह नहीं देखती। दिल्ली विश्वविद्यालय के अंतिम वर्ष का छात्र निखिल कहता है - 'मेरे पापा तीस साल एक ही कंपनी में रहे। मुझे नहीं लगता कि मैं तीन साल भी एक ही जगह रहूंगा।'

पहली नज़र में यह अस्थिरता लग सकती है। लेकिन क्या सचमुच ऐसा है? या यह उस अर्थव्यवस्था के अनुकूलन की प्रक्रिया है, जिसमें परिवर्तन ही सबसे स्थायी तत्व बन चुका है?

जेन जेड नौकरी बदलती है। कई बार शहर भी। कई बार पेशा भी। और कभी-कभी पूरा उद्योग। उसकी पहचान विज़िटिंग कार्ड पर छपे पदनाम से कम... अपने काम से अधिक बनती है। इसीलिए उसकी शब्दावली भी बदल गई है। 'जॉब सिक्योरिटी' के साथ अब 'वर्क-लाइफ बैलेंस', 'पर्पज़', 'फ्लेक्सिबिलिटी', 'रिमोट वर्क', 'पोर्टफोलियो करियर', 'फ्रीलांसिंग' और 'डिजिटल नोमैड' जैसे शब्द सामान्य बातचीत का हिस्सा हैं।

पुरानी पीढ़ी इसे अस्थिरता कहती है। नई पीढ़ी... इसे स्वतंत्रता का दूसरा नाम मानती है। लेकिन क्या यह स्वतंत्रता सचमुच उतनी सरल है, जितनी दिखाई देती है?

यहीं से एक नया प्रश्न जन्म लेता है। यदि नौकरी अब जीवन का अंतिम लक्ष्य नहीं रही... तो जेन जेड आखिर चाहती क्या है? यह प्रश्न जितना सरल दिखाई देता है, उसका उत्तर उतना ही जटिल है। पहली बार एक ऐसी पीढ़ी हमारे सामने है, जिसके लिए सफलता का अर्थ केवल वेतन नहीं है। वह आय चाहती है। लेकिन उसके साथ अर्थ भी। वह करियर चाहती है। लेकिन उसके साथ जीवन भी। वह महत्वाकांक्षी है। लेकिन किसी एक संस्था के प्रति आजीवन निष्ठा को सफलता का एकमात्र पैमाना नहीं मानती। इसीलिए कंपनियां आज जेन जेड को केवल भर्ती नहीं कर रहीं। उसे समझने की कोशिश भी कर रही हैं। बेंगलुरु के व्हाइटफील्ड स्थित एक टेक स्टार्टअप के संस्थापक अर्नव राज ने कहा - 'आज सबसे कठिन काम निवेश जुटाना नहीं है। सबसे कठिन काम अच्छे युवाओं को लंबे समय तक अपने साथ बनाए रखना है। वे वेतन से पहले पूछते हैं - मैं यहां क्या सीखूंगा? मेरा विकास कैसे होगा? क्या मैं दूर से काम कर सकता हूं?'

कुछ वर्ष पहले तक ऐसे प्रश्न असामान्य माने जाते। आज यही सामान्य हैं। प्रबंधन विशेषज्ञ प्रोफेसर लिंडा ग्रैटन ने लिखा है - 'काम केवल जीविका कमाने का माध्यम नहीं रहेगा; यह पहचान, सीखने और उद्देश्य की खोज का भी स्थान होगा।'

यदि इस विचार को भारत में देखें, तो उसके अनेक उदाहरण दिखाई देते हैं। पुणे की 22 वर्षीय अनन्या इंजीनियरिंग पूरी करने के

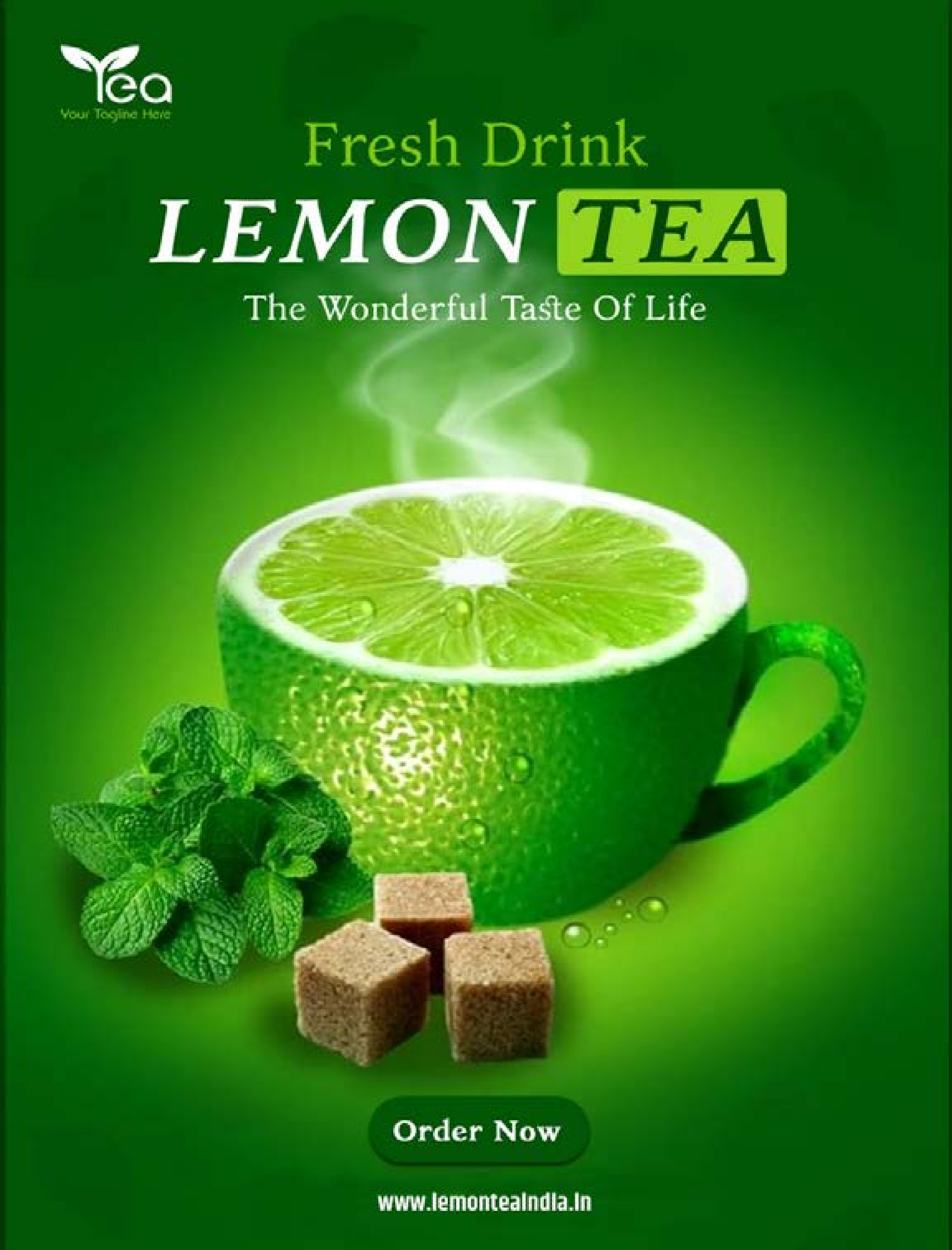

Tea
Your Tagline Here
Fresh Drink
LEMON TEA
The Wonderful Taste Of Life
Order Now
www.lemontealndia.in

बाद एक बहुराष्ट्रीय कंपनी में नौकरी कर सकती थी। उसने दूसरा रास्ता चुना। ग्रामीण महिलाओं के लिए डिजिटल मार्केटिंग प्लेटफॉर्म बनाने का। यह निर्णय आर्थिक रूप से जोखिम भरा था। लेकिन जब उससे पूछा गया - 'तुमने यह रास्ता क्यों चुना?'

वह मुस्कुराकर बोली - 'मैं केवल नौकरी नहीं करना चाहती थी। मैं कुछ ऐसा बनाना चाहती थी, जो मेरे बाद भी रहे।' यह उत्तर केवल अनन्या का नहीं है। यह जेन जेड की बदलती आकांक्षाओं की एक गूंज है।

लेकिन कहानी का दूसरा पक्ष भी उतना ही वास्तविक है। हर युवा स्टार्टअप नहीं बना रहा। हर युवा इन्फ्लुएंसर नहीं है। और हर किसी के पास विकल्प भी नहीं हैं। भारत के करोड़ों युवा आज भी प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कर रहे हैं। सरकारी नौकरियों के लिए वर्षों तक संघर्ष कर रहे हैं। अस्थायी रोजगार, संविदा नियुक्तियों और बढ़ती प्रतिस्पर्धा के बीच अपना भविष्य खोज रहे हैं।

इसीलिए जेन जेड को केवल महानगरों की कॉफी शॉप्स, स्टार्टअप संस्कृति या को-वर्किंग स्पेस से समझना एक गंभीर भूल होगी।

कोटा का छात्र। प्रयागराज का अभ्यर्थी। दरभंगा का स्नातक। अगरतला की शोधार्थी। गुरुग्राम का सॉफ्टवेयर इंजीनियर। सभी एक ही पीढ़ी के सदस्य हैं। लेकिन उनके सपनों का सामाजिक भूगोल अलग-अलग है। यही भारत की सबसे बड़ी जटिलता है।

भारत में जेन जेड का कोई एक चेहरा नहीं है। वह अनेक भारतों में जी रही है। फिर भी एक साझा धागा उन्हें जोड़ता है - अनिश्चितता। नौकरी की अनिश्चितता। तकनीक की अनिश्चितता। कौशल की अनिश्चितता। और भविष्य की अनिश्चितता।

इसी संदर्भ में पीटर ड्रकर का एक प्रसिद्ध कथन आज पहले से अधिक प्रासंगिक लगता है - 'भविष्य की सबसे अच्छी भविष्यवाणी उसे स्वयं निर्मित करना है।'

शायद इसी कारण जेन जेड अवसर का इंतजार कम करती है। वह अवसर बनाने की कोशिश करती है। एक मोबाइल फोन से व्यवसाय शुरू कर देती है। यूट्यूब चैनल बना लेती है। डिजिटल डिज़ाइन बेचती है। ऑनलाइन पढ़ाती है। गेम विकसित करती है। फ्रीलांसिंग करती है। और कई बार आय के पांच अलग-अलग स्रोत बना लेती है। यह केवल अतिरिक्त कमाई नहीं है। यह काम करने की नई मानसिकता है। लेकिन इस स्वतंत्रता की भी एक कीमत है।

मुंबई के उसी को-वर्किंग स्पेस में शाम के सात बज चुके हैं। शुभम अब भी लैपटॉप पर बैठा है। कोई बॉस उसे रोक नहीं रहा। लेकिन वह स्वयं उठ नहीं पा रहा। अगले सप्ताह विदेशी क्लाइंट की समय-सीमा है। रात को अमेरिकी कंपनी के एक अधिकारी के साथ बैठक। सुबह भारत की टीम के साथ कॉल। दोपहर में नया प्रोजेक्ट। उसके पास स्वतंत्रता है। लेकिन निश्चित समय नहीं। वह अपने लिए काम करता है। लेकिन कई बार चौबीस घंटे काम करता है।

पहले घड़ी तय करती थी कि काम कब समाप्त होगा। अब काम तय करता है कि घड़ी कब रुकेगी। यही गिग इकॉनमी का दूसरा चेहरा है। जहां आजादी और असुरक्षा साथ-साथ चलती हैं। और तभी कृत्रिम बुद्धिमत्ता एक नया प्रश्न सामने रखती है। यदि AI कोड लिख सकती है... डिज़ाइन तैयार कर सकती है... वीडियो संपादित कर सकती है... तो मनुष्य की भूमिका क्या होगी?

यह प्रश्न केवल इंजीनियर का नहीं है। पत्रकार का भी है। वकील का भी। शिक्षक का भी। कलाकार का भी। संभवतः पहली बार पूरी दुनिया का युवा वर्ग एक साझा प्रश्न से जूझ रहा है - क्या मशीनें हमारा काम ले लेंगी? या.. क्या वे हमें ऐसा काम करने के लिए विवश करेंगी, जिसकी हमने अभी कल्पना भी नहीं की है?

इसी प्रश्न का उत्तर आने वाले दशक की अर्थव्यवस्था तय करेगा। और यहीं से हमारी यात्रा अगले पड़ाव की ओर बढ़ती है। अब हमें केवल करियर नहीं समझना। मनुष्य और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के बदलते संबंध को समझना है।

नया सहकर्मी

AI के साथ जीना सीखती पहली पीढ़ी

सुबह के आठ बजे हैं। बेंगलुरु के कोरमंगला स्थित एक छोटे-से अपार्टमेंट में मीरा अपने लैपटॉप के सामने बैठी है। कॉफी का मग अभी आधा भरा है। कंपनी का कार्यालय शहर के दूसरे छोर पर है। लेकिन आज वह घर से काम कर रही है। स्क्रीन पर तीन विंडो खुली हैं। पहली में उसका कोड। दूसरी में टीम की ऑनलाइन बैठक। तीसरी में ChatGPT। वह कोड लिखती है। एक त्रुटि आती है। कुछ क्षण रुकती है। वरिष्ठ इंजीनियर को संदेश भेजने के बजाय ChatGPT से पूछती है - 'इस कोड में बग कहां है?' कुछ सेकंड बाद उत्तर सामने है। वह पढ़ती है। समझती है। कोड बदलती है। समस्या हल हो जाती है। उसके चेहरे पर कोई आश्चर्य नहीं है।

यह उसके लिए चमत्कार नहीं। कार्यदिवस का सामान्य हिस्सा है। यदि यही दृश्य बीस वर्ष पहले किसी सॉफ्टवेयर कंपनी में होता, तो नया इंजीनियर अपने वरिष्ठ सहयोगी की मेज तक जाता। उससे पहले... शायद मोटी प्रोग्रामिंग पुस्तकों तक। आज... उसका पहला सहकर्मी एक मशीन है। और संभवतः यही इक्कीसवीं सदी का सबसे बड़ा कार्य-सांस्कृतिक परिवर्तन है।

हम अक्सर कहते हैं कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता नौकरियां बदल देगी। संभव है। लेकिन उससे पहले उसने एक और बड़ा परिवर्तन कर दिया है। उसने काम करने की प्रक्रिया बदल दी है। जेन जेड पहली ऐसी पीढ़ी है, जिसने AI को भविष्य की तकनीक की तरह नहीं... अपने दैनिक कार्य-सहयोगी की तरह अपनाया है। उसके लिए ChatGPT, Claude, Gemini और दूसरे AI उपकरण किसी विज्ञान-कथा के पात्र नहीं हैं। वे उसी तरह के औजार हैं, जैसे कभी कैलकुलेटर, सर्च इंजन या स्प्रेडशीट हुआ करते थे। यही कारण है कि जेन जेड और AI का संबंध पिछली पीढ़ियों से बिल्कुल अलग है।

पुरानी पीढ़ी पूछती है - 'क्या AI मेरी नौकरी ले लेगा?'

जेन जेड पूछती है - 'मैं AI के साथ मिलकर बेहतर काम कैसे कर सकता हूं?'

यही अंतर... पूरे युग का अंतर है।

चेन्नई के युवा AI इंजीनियर एस रंगनाथन ने मोबाइल फोन पर बातचीत में कहा - 'हम AI से प्रतिस्पर्धा नहीं कर रहे। हम उसके साथ टीम बना रहे हैं।' यह सुनने में एक साधारण वाक्य लगता है। लेकिन संभवतः भविष्य की पूरी कार्य-संस्कृति इसी में छिपी है। आज दुनिया भर के विश्वविद्यालयों में एक नई बहस चल रही है। क्या छात्रों को AI से दूर रखा जाए? या उन्हें AI के साथ काम करना सिखाया जाए?

प्रबंधन विशेषज्ञ ईथन मोलिक का तर्क है - 'AI को कैलकुलेटर की तरह मत देखिए। उसे अपने सबसे सक्षम, लेकिन अपूर्ण सहकर्मी की तरह देखिए।'

यह केवल तकनीकी सलाह नहीं है। यह शिक्षा, रोजगार और रचनात्मकता - तीनों के लिए एक नया दर्शन है।

जयपुर का आरव अब असाइनमेंट के पहले ड्राफ्ट से नहीं डरता। वह विषय पढ़ता है। नोट्स बनाता है। फिर AI से कहता है - 'मेरे तर्क कमजोर हैं। इन्हें बेहतर बनाओ।' लेकिन अंतिम उत्तर वह कभी ज्यों-का-त्यों जमा नहीं करता। क्योंकि उसने एक बात सीख ली है - AI उत्तर दे सकता है। लेकिन उत्तर की जिम्मेदारी अभी भी मनुष्य की है।

और शायद... आने वाले वर्षों में शिक्षा-व्यवस्था को सबसे पहले यही बात सीखनी होगी।

धनबाद स्थित एसएसएलएनटी महिला महाविद्यालय के हिंदी के सहायक प्रोफेसर डॉ. धीरज मिश्रा ने मुस्कुराते हुए कहा - 'पहले मैं छात्रों से पूछता था - क्या यह निबंध तुमने स्वयं लिखा है? अब मैं पूछता हूं - इसमें AI की सहायता कहां तक ली गई है?'

यह परिवर्तन केवल परीक्षा-पद्धति का नहीं है। यह विश्वास की

नई संरचना का संकेत है। शिक्षा अब रटकर उत्तर लिख देने की प्रक्रिया नहीं रह सकती। जब मशीन कुछ ही सेकंड में एक सामान्य उत्तर तैयार कर सकती है, तब मनुष्य का मूल्य सामान्य उत्तर देने में नहीं रहेगा। उसका वास्तविक मूल्य होगा - नया प्रश्न पूछने में, नया विचार गढ़ने में और किसी समस्या को एक अलग दृष्टि से देखने में। शायद यही कारण है कि जेन जेड के सामने सबसे बड़ी चुनौती तकनीक नहीं है। सबसे बड़ी चुनौती है - मानवीय बने रहना।

क्योंकि AI जितनी अधिक सक्षम होती जाएगी, मनुष्य से उतनी ही अधिक अपेक्षा होगी कि वह कल्पना करे, संदेह करे, नैतिक निर्णय ले और उन प्रश्नों को उठाए, जिन्हें मशीन अभी भी नहीं समझ सकती। AI केवल काम करने का तरीका नहीं बदल रही। वह धीरे-धीरे मनुष्य होने का अर्थ भी बदलने लगी है। और यहीं सबसे कठिन प्रश्न सामने आता है।

यदि कृत्रिम बुद्धिमत्ता अब हमारी सहकर्मी बन चुकी है, तो प्रश्न यह नहीं रह जाता कि वह क्या कर सकती है। प्रश्न यह है- ऐसा क्या है, जो केवल मनुष्य ही कर सकता है?

आज यही प्रश्न दुनिया के विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों और तकनीकी कंपनियों में बार-बार पूछा जा रहा है। कुछ वर्ष पहले तक आशंका यह थी कि मशीनें कारखानों में श्रमिकों का स्थान लेंगी। आज चर्चा उससे कहीं आगे पहुंच चुकी है। मशीनें संगीत रच रही हैं। चित्र बना रही हैं। कानूनी दस्तावेज़ तैयार कर रही हैं। चिकित्सकीय रिपोर्टों का विश्लेषण कर रही हैं।

यहां तक कि वैज्ञानिक अनुसंधान में भी सहयोग कर रही हैं। यह परिवर्तन केवल श्रम का नहीं है। यह बौद्धिक श्रम के स्वरूप का परिवर्तन है। मुंबई के लोअर परेल स्थित एक डिज़ाइन स्टूडियो में 26 वर्षीय ग्राफ़िक डिज़ाइनर सना अपनी टीम के साथ एक नए ब्रांड अभियान पर काम कर रही है।

कुछ वर्ष पहले किसी विज्ञापन की शुरुआती रूपरेखा तैयार करने में दो-तीन दिन लग जाते थे। आज वही काम कुछ मिनटों में हो जाता है। AI पांच अलग-अलग डिज़ाइन सुझा देती है। दस टैगलाइन लिख देती है। रंगों के अनेक संयोजन सामने रख देती है। लेकिन जब सना से पूछा गया - 'तो क्या अब डिज़ाइनर की आवश्यकता कम हो जाएगी?'

वह मुस्कुराकर बोली - 'नहीं... अब अच्छा डिज़ाइनर पहले से भी अधिक ज़रूरी होगा। क्योंकि मशीन विकल्प दे सकती है, पहचान नहीं।'

यह उत्तर केवल डिज़ाइन की दुनिया का नहीं है। लगभग हर रचनात्मक पेशे का सार इसी में छिपा है। प्रबंधन विशेषज्ञ ईथन मोलिक ने लिखा है - 'AI आपको प्रतिस्थापित नहीं करेगी, लेकिन AI का प्रभावी उपयोग करने वाला व्यक्ति संभव है कि आपको प्रतिस्थापित कर दे।'

आने वाले दशक का पूरा श्रम-बाज़ार शायद इसी एक वाक्य में समाया हुआ है। प्रतिस्पर्धा अब केवल मनुष्य बनाम मशीन की नहीं होगी। बल्कि - मनुष्य + AI बनाम मनुष्य की होगी।

यही कारण है कि जेन जेड AI को अस्वीकार करने के बजाय उसे अपने कौशल का विस्तार बना रही है। लेकिन हर तकनीकी क्रांति अपने साथ एक नैतिक प्रश्न भी लेकर आती है।

यदि AI कविता लिख सकती है... तो कवि की पहचान किसमें बचेगी? यदि AI चित्र बना सकती है... तो सृजन किसे कहेंगे? यदि AI शोधपत्र का पहला मसौदा तैयार कर सकती है... तो मौलिकता की कसौटी क्या होगी? इन प्रश्नों के उत्तर अभी किसी के पास नहीं

डिजिटल युग का मनोविज्ञान एवं जेन-ज़ेड

डॉ. सुजाता सिंह
सहायक प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, एसएसएलएनटी महिला महाविद्यालय, धनबाद

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जेन-ज़ेड ऐसी पीढ़ी है, जिसकी सबसे बड़ी विशेषता अपनी पहचान, प्रामाणिकता और जीवन के उद्देश्य की निरंतर खोज है। यह एक अति-संयोजित डिजिटल संसार में बड़ी हुई पीढ़ी है, जो सामाजिक रूप से अधिक जागरूक है और मानसिक स्वास्थ्य जैसे विषयों पर खुलकर चर्चा करने में संकोच नहीं करती। वहीं, सोशल मीडिया पर निरंतर तुलना, त्वरित संतुष्टि और बाहरी स्वीकृति की चाह इसे पूर्ववर्ती पीढ़ियों की तुलना में तनाव और चिंता के प्रति अधिक संवेदनशील भी बनाती है।

जेन-ज़ेड व्यक्तिगत स्वतंत्रता, सार्थक रिश्तों और ऐसे कार्य

को महत्व देती है, जो उसके व्यक्तिगत मूल्यों के अनुरूप हो। इसके लिए केवल आर्थिक सफलता पर्याप्त नहीं है। यह पीढ़ी स्वयं से पूछती है - 'मैं कौन हूं?, मेरा उद्देश्य क्या है? और मैं अपने वास्तविक स्वरूप के साथ कैसे जीवन जी सकता हूं?' यही प्रश्न उसके व्यवहार, आकांक्षाओं और विश्वदृष्टि को आकार देते हैं।

डिजिटल युग की पहली वास्तविक पीढ़ी होने के कारण इनके विचार, भावनाएं और व्यवहार तकनीक से गहराई से प्रभावित हैं। सोशल मीडिया सीखने और संवाद का अवसर देता है, लेकिन साथ ही निरंतर तुलना, सूचनाओं की अधिकता और आदर्श छवि बनाए रखने का दबाव भी बढ़ाता है। विकासात्मक मनोविज्ञान के अनुसार, जेन-ज़ेड सफलता की परिभाषा को नए सिरे से गढ़ रही है। उपलब्धियां इसके लिए महत्वपूर्ण हैं, किंतु मानसिक स्वास्थ्य, कार्य-जीवन संतुलन, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सार्थक संबंध भी उतने ही आवश्यक हैं। तेजी से बदलती दुनिया ने इसे अत्यधिक अनुकूलनशील बनाया है, हालांकि यह अनुकूलन कई बार भावनात्मक दबाव भी उत्पन्न करता है।

जेन-ज़ेड का मनोविज्ञान- जुड़ाव और तुलना, स्वतंत्रता और अनिश्चितता, महत्वाकांक्षा और मानसिक स्वास्थ्य के बीच संतुलन की सतत खोज है। इसे समझने की कुंजी भी यही संतुलन है।

हैं। और शायद यही हमारे समय की सबसे बड़ी बौद्धिक चुनौती है।

दिल्ली के एक विश्वविद्यालय में आयोजित संगोष्ठी के दौरान दर्शनशास्त्र के एक प्रोफेसर ने छात्रों से पूछा - 'यदि किसी दिन AI तुम्हारी तरह सोचने लगे, तो तुम्हें मनुष्य होने पर सबसे अधिक गर्व किस बात का होगा?'

सभागार कुछ क्षणों के लिए मौन हो गया। फिर पीछे बैठी एक छात्रा ने धीरे से उत्तर दिया- 'शायद इस बात का... कि मैं प्रेम कर सकती हूं... और पछता भी सकती हूं।' कोई तालियां नहीं बजीं।

लेकिन कई लोगों ने अपनी डायरी में वह वाक्य लिख लिया। क्योंकि उसी क्षण चर्चा तकनीक से आगे बढ़कर मनुष्यता तक पहुंच गई थी। यहीं से जेन जेड की सबसे कठिन परीक्षा शुरू होती है। उसे केवल AI का उपयोग करना नहीं सीखना। उसे यह भी सीखना है कि AI का उपयोग कहां नहीं करना है।

कब मशीन की गति पर्याप्त है... और कब मनुष्य की संवेदना अनिवार्य। कब आँकड़े निर्णय लेने में सहायता कर सकते हैं... और कब अंतिम निर्णय केवल नैतिक विवेक से ही संभव है। एक प्रतिष्ठित भारतीय शिक्षाविद् ने एक चर्चा के दौरान कहा था - 'भविष्य का सबसे बड़ा कौशल कोडिंग नहीं होगा। भविष्य का सबसे बड़ा कौशल होगा - सही प्रश्न पूछना और सही निर्णय लेना।'

यह कथन शिक्षा की पूरी दिशा बदल देता है। यदि उत्तर मशीन दे सकती है, तो शिक्षा का उद्देश्य उत्तर याद करना नहीं रह जाता। उसका उद्देश्य बन जाता है - जिज्ञासा। आलोचनात्मक चिंतन। रचनात्मकता। नैतिकता। सहयोग। और सबसे बढ़कर - विवेक।

यही वह क्षेत्र है जहां जेन जेड पिछली पीढ़ियों से अलग दिखाई देती है। उसके लिए AI कोई भयावह छाया नहीं है। वह उसके साथ प्रयोग करती है। गलतियां करती है। सीखती है।

कभी उस पर आवश्यकता से अधिक निर्भर भी हो जाती है। लेकिन धीरे-धीरे वह यह भी समझने लगती है कि मशीन जितनी अधिक शक्तिशाली होती जाएगी, मनुष्य के लिए उतना ही आवश्यक होगा कि वह अपने भीतर के उन गुणों को बचाए रखे, जिन्हें अब तक कोई एल्गोरिद्म पूरी तरह नहीं सीख पाया - सहानुभूति। कल्पनाशीलता। हास्य। करुणा। नैतिक साहस। आत्म-संदेह। और प्रेम।

यही वे गुण हैं जो किसी सभ्यता को केवल बुद्धिमान नहीं, बल्कि मानवीय भी बनाते हैं। शाम को मीरा अपना लैपटॉप बंद करती है। दिन भर उसने दर्जनों बार AI की सहायता ली। लेकिन रात को अपनी डायरी में वह केवल एक वाक्य लिखती है - 'आज भी सबसे कठिन काम कोड लिखना नहीं था... सबसे कठिन काम यह तय करना था कि कौन-सा निर्णय मुझे स्वयं लेना चाहिए।'

शायद यही जेन जेड की सबसे बड़ी कहानी है। यह पहली पीढ़ी है जिसने मशीनों को केवल औज़ार नहीं, बल्कि सहयोगी के रूप में स्वीकार किया है। लेकिन इसी कारण उसके सामने इतिहास की एक नई जिम्मेदारी भी है - तकनीक को अधिक बुद्धिमान बनाते हुए, मनुष्य को अधिक मानवीय बनाए रखना। क्योंकि सभ्यताएं मशीनों से नहीं टूटतीं। वे तब टूटती हैं, जब मनुष्य अपने सबसे मानवीय गुण खो देता है। और शायद यही कारण है कि तकनीक की हर बड़ी छलांग के बाद सबसे गहरे परिवर्तन हमेशा संबंधों में दिखाई देते हैं।

यदि AI ने काम करने का तरीका बदल दिया है... तो सोशल मीडिया और डिजिटल जीवन ने प्रेम, मित्रता और परिवार को किस रूप में बदल दिया है?

भीड़ में अकेले

रिश्ते, पहचान और डिजिटल अकेलापन

मुंबई के पवई स्थित एक अपार्टमेंट की बालकनी में 21 वर्षीय अदिति मोबाइल हाथ में लिए बैठी है। इंस्टाग्राम पर उसके लगभग 1.18 लाख फॉलोअर्स हैं। पिछले सप्ताह उसके एक वीडियो को 28 लाख लोगों ने देखा था। हर दिन सैकड़ों संदेश आते हैं।

'Amazing Content!' 'Love from Nepal!' 'You inspire me...' 'Please reply...'

मोबाइल स्क्रीन लगातार चमक रही है। लेकिन उसी रात उसकी निजी डायरी में केवल एक पंक्ति दर्ज होती है - 'आज पूरे दिन बहुत लोगों से बात हुई... लेकिन किसी से बातचीत नहीं हुई।' शायद यही जेन जेड का सबसे गहरा विरोधाभास है। मानव इतिहास में पहली बार एक ऐसी पीढ़ी हमारे सामने है, जो सबसे अधिक जुड़ी हुई भी है... और शायद सबसे अधिक अकेलेपन का अनुभव भी करती है।

क्या यह केवल संयोग है? या इन दोनों के बीच कोई अदृश्य संबंध है? कोलकाता के सियालदह मेनलाइन की लोकल ट्रेन सुबह का ऑफिस टाइम। पूरा डिब्बा यात्रियों से भरा है। लोग एक-दूसरे के इतने निकट खड़े हैं कि कंधे टकरा रहे हैं। लेकिन लगभग हर निगाह एक अलग स्क्रीन पर टिकी है। किसी के कानों में ईयरफोन हैं। कोई रील देख रहा है। कोई संदेश लिख रहा है। कोई वीडियो कॉल पर है। पहली नज़र में लगता है कि सभी किसी-न-किसी से जुड़े हुए हैं। लेकिन कुछ क्षण ध्यान से देखिए। एक ही डिब्बे में खड़े लोग... अलग-अलग डिजिटल ब्रह्मांडों में रह रहे हैं।

भौतिक निकटता। डिजिटल दूरी। और कई बार... डिजिटल निकटता। भावनात्मक दूरी।

शायद इक्कीसवीं सदी का मनुष्य इन्हीं दो ध्रुवों के बीच अपना जीवन जी रहा है। कोलकाता की मनोवैज्ञानिक डॉ. रश्मि सेन ने बातचीत के दौरान एक बात कही, जो लंबे समय तक मेरे साथ रही - 'आज का युवा अकेला इसलिए नहीं है कि उसके पास लोग कम हैं। वह इसलिए अकेला है क्योंकि उसके पास लगातार संवाद है, लेकिन गहरे संबंध कम होते जा रहे हैं।'

यह केवल एक चिकित्सकीय टिप्पणी नहीं है। यह हमारे समय की सामाजिक व्याख्या भी है। क्योंकि संबंधों की संख्या... और संबंधों की गुणवत्ता... दो अलग-अलग बातें हैं।

लेकिन कहानी का दूसरा पक्ष भी उतना ही महत्वपूर्ण है। जयपुर का आरव देर रात तक अपने मित्रों के साथ ऑनलाइन गेम खेलता है। उनमें एक मित्र नागालैंड से है। एक पुणे से। एक ढाका से। और एक काठमांडू से। वे साथ हंसते हैं। रणनीति बनाते हैं। हारते हैं। जीतते हैं।

यदि कोई बाहरी व्यक्ति उन्हें देखे, तो शायद कहे - 'ये तो केवल ऑनलाइन दोस्त हैं।' लेकिन पिछले वर्ष जब नागालैंड वाले मित्र के पिता का निधन हुआ, तो सबसे पहले वीडियो कॉल पर उपस्थित वही चार दोस्त थे। उन्होंने उसे कभी प्रत्यक्ष नहीं देखा था। फिर भी दुःख साझा था। यानी डिजिटल दुनिया ने केवल सतही संबंध नहीं बनाए। उसने संबंधों के नए रूप भी रचे हैं। यही कारण है कि जेन जेड को समझने के लिए पुराने सामाजिक शब्दकोश अब पर्याप्त नहीं रह गए हैं। कुछ वर्ष पहले तक मित्रता का अर्थ था - पड़ोस। विद्यालय। कॉलेज। कार्यस्थल। आज मित्रता का आधार साझा रुचियां भी हो सकती हैं। किसी ऑनलाइन पुस्तक क्लब के सदस्य। किसी गेमिंग

पुराने सामाजिक शब्दकोश अब पर्याप्त नहीं रह गए हैं। कुछ वर्ष पहले तक मित्रता का अर्थ था - पड़ोस। विद्यालय। कॉलेज। कार्यस्थल। आज मित्रता का आधार साझा रुचियां भी हो सकती हैं। किसी ऑनलाइन पुस्तक क्लब के सदस्य। किसी गेमिंग समुदाय के साथी। किसी ओपन-सोर्स परियोजना के सहयोगी।

जेन-ज़ेड : संघर्ष से सपनों तक

डॉ. धीरज मिश्र
सहायक प्रोफेसर,
एसएसएलएनटी महिला
महाविद्यालय, धनबाद

कोयले की काली धरती पर उगते सपनों का रंग अब बदल चुका है। जिन अंचलों की पहचान कभी खदानों की सायरन और श्रमिक जीवन से होती थी, वहीं आज डिजिटल स्क्रीन की रोशनी में भविष्य आकार ले रहा है। हमारे महाविद्यालय की अधिकांश छात्राएं ऐसे ही श्रमिक और कोयलांचल क्षेत्रों से आती हैं। वे केवल एक भौगोलिक पृष्ठभूमि का प्रतिनिधित्व नहीं करतीं, बल्कि उस नई पीढ़ी का चेहरा हैं, जिसे आज जेन-ज़ेड के नाम से जाना जाता है।

यह पीढ़ी परंपराओं को नकारती नहीं, बल्कि उन्हें नए समय की आवश्यकताओं के अनुरूप पुनर्परिभाषित करती है। शिक्षा, तकनीक और सूचना तक सहज पहुंच ने इनके सपनों को स्थानीय सीमाओं से मुक्त कर वैश्विक क्षितिज से जोड़ दिया है। इनके लिए स्मार्टफोन केवल संवाद का माध्यम नहीं, बल्कि ज्ञान, अवसर, कौशल और आत्मनिर्भरता का प्रवेश-द्वार है।

हालांकि, डिजिटल युग अपने साथ नई चुनौतियां भी लेकर आया है - आभासी पहचान का संकट, मानसिक स्वास्थ्य की चिंता, सूचनाओं की विश्वसनीयता और सामाजिक उत्तरदायित्व का प्रश्न। इसलिए तकनीकी दक्षता तभी सार्थक है, जब उसके साथ विवेक, संवेदनशीलता और नैतिक चेतना भी विकसित हो।

कोयलांचल की ये युवा छात्राएं यह सिद्ध कर रही हैं कि नई सभ्यता का निर्माण केवल महानगरों में नहीं होता। वह उन छोटे शहरों, कस्बों और श्रमिक परिवारों में भी आकार लेता है, जहां संघर्ष जीवन का संस्कार है और शिक्षा परिवर्तन का सबसे सशक्त माध्यम। यही चेतना भारत के भविष्य की वास्तविक आधारशिला है।

समुदाय के साथी। किसी ओपन-सोर्स परियोजना के सहयोगी। किसी मानसिक स्वास्थ्य सहायता समूह के प्रतिभागी।

भूगोल अब संबंधों की अनिवार्य शर्त नहीं रहा। एल्गोरिद्म ने दूरियां कम कर दीं। लेकिन क्या उसने निकटता भी बनाई? यहीं अमेरिकी समाजशास्त्री शैरी टर्कल का एक विचार प्रासंगिक हो उठता है - 'तकनीक केवल यह नहीं बदलती कि हम क्या करते हैं; वह यह भी बदल देती है कि हम एक-दूसरे के लिए क्या हैं।'

इस एक विचार में शायद जेन जेड की सामाजिक कहानी का बड़ा हिस्सा समाया हुआ है। स्मार्टफोन ने केवल संचार की गति नहीं बढ़ाई। उसने प्रतीक्षा का अर्थ बदल दिया। अनुपस्थिति का अर्थ बदल दिया। उत्तर न मिलने की बेचैनी बदल दी। प्रेम की भाषा बदल दी। मित्रता की लय बदल दी।

और शायद... अकेलेपन का स्वरूप भी। लेकिन कहानी का दूसरा पक्ष भी उतना ही महत्वपूर्ण है।

भारत के छोटे शहरों और कस्बों में रहने वाले लाखों युवाओं के लिए डिजिटल दुनिया पहली बार वह सामाजिक स्वतंत्रता लेकर आई, जो उन्हें अपने भौतिक परिवेश में उपलब्ध नहीं थी।

दंतेवाड़ा की कविता अब केवल अपने गांव की छात्रा नहीं है। वह विज्ञान सीखने वाले वैश्विक समुदाय का हिस्सा भी है। श्रीनगर की ज़ोया अपनी तस्वीरें पूरी दुनिया तक पहुंचा सकती है। इंफाल का एक संगीतकार बिना मुंबई आए लाखों श्रोताओं तक पहुंच सकता है। डिजिटल दुनिया ने संबंधों को केवल सीमित नहीं किया। उसने उन्हें विस्तृत भी किया है।

लेकिन विस्तार... हमेशा गहराई नहीं बनता। शायद यही जेन जेड की सबसे बड़ी भावनात्मक चुनौती है। इसीलिए इस पीढ़ी की सबसे बड़ी खोज केवल कनेक्शन नहीं... सार्थक संबंध है। और यहीं से इस अध्याय का अगला प्रश्न जन्म लेता है।

यदि डिजिटल दुनिया ने मित्रता को बदल दिया है... तो प्रेम? परिवार? विवाह? पहचान? और मानसिक स्वास्थ्य? इन सबका क्या हुआ?

यात्रा यहीं से आगे बढ़ती है। लेकिन क्या सचमुच समस्या केवल मोबाइल फोन है? यदि ऐसा होता, तो स्मार्टफोन रखने वाला हर युवा अकेला होता। वास्तविकता इससे कहीं अधिक जटिल है। समस्या तकनीक नहीं है। समस्या यह है कि तकनीक ने संबंधों की गति बदल दी है। प्रेम कभी प्रतीक्षा में परिपक्व होता था। आज कई बार एक नोटिफिकेशन से शुरू होता है।

मित्रता कभी वर्षों में गहरी होती थी। आज वह कभी-कभी एक साझा रील से शुरू होकर एक सप्ताह में समाप्त भी हो जाती है।

परिवार कभी दिनभर के बिखराव के बाद रात के भोजन की मेज पर एकत्र होता था। आज अनेक घरों में पूरा परिवार एक ही कमरे में बैठा होता है।

लेकिन हर व्यक्ति की निगाह अलग-अलग स्क्रीन पर होती है। यह केवल भारत का दृश्य नहीं है। यह हमारे समय का वैश्विक दृश्य है। अमेरिकी सामाजिक मनोवैज्ञानिक जोनाथन हैड्ट अपनी चर्चित पुस्तक The Anxious Generation में लिखते हैं - 'हमने बचपन को खेल के मैदानों से उठाकर स्मार्टफोन के भीतर पहुंचा दिया।'

उनका तर्क केवल सोशल मीडिया की आलोचना नहीं है। वे कहते हैं कि पिछली पीढ़ियां वास्तविक दुनिया में जोखिम उठाते हुए बड़ी हुईं। वे पेड़ों पर चढ़ीं। गिरीं। झगड़ीं। दोस्त बनाए। समझौते किए। धीरे-धीरे भावनात्मक रूप से परिपक्व हुईं।

जबकि आज के अनेक बच्चे और किशोर अपने सामाजिक अनुभव का बड़ा हिस्सा स्क्रीन के माध्यम से अर्जित करते हैं। यदि यह परिवर्तन सच है, तो उसका प्रभाव केवल संवाद पर नहीं पड़ेगा। वह व्यक्तित्व के निर्माण पर भी पड़ेगा। आगरा के एक वरिष्ठ मनोचिकित्सक डॉ. एसएम गुप्ता से बातचीत के दौरान पूछा - 'आज आपके पास आने वाले युवाओं की सबसे बड़ी समस्या क्या होती है?'

उन्होंने बिना किसी आंकड़े का सहारा लिए उत्तर दिया - 'तुलना।'

मैंने पूछा- 'अवसाद नहीं?'

वे मुस्कुराए। 'अवसाद का रास्ता भी अक्सर तुलना से होकर जाता है।'

शायद यही सोशल मीडिया का सबसे अदृश्य प्रभाव है। उसने तुलना का भूगोल बदल दिया है। पहले तुलना अपने विद्यालय तक सीमित थी। अपने पड़ोस तक। अपने शहर तक।

आज... सत्रह वर्ष का एक छात्र हर सुबह उठते ही दुनिया के सबसे सफल लोगों से अपनी तुलना करने लगता है। किसी का स्टार्टअप। किसी का शरीर। किसी की विदेश यात्रा। किसी की प्रेम कहानी। किसी की सफलता। और एल्गोरिद्म बड़ी सावधानी से उसे वही जीवन दिखाता रहता है, जो सबसे अधिक आकर्षक दिखाई देता है। धीरे-धीरे वह यह भूलने लगता है कि स्क्रीन पर दिखाई देने वाला जीवन वास्तविक जीवन नहीं होता। वह जीवन का संपादित संस्करण होता है। चुने हुए क्षणों का संग्रह। पूरे मनुष्य का नहीं।

श्रीनगर की ज़ोया एक बातचीत के दौरान कहती है - 'कभी-कभी लगता है कि पूरी दुनिया बहुत खुश है... और केवल मैं संघर्ष कर रही हूं।'

उसकी यह भावना असामान्य नहीं है। क्योंकि सोशल मीडिया ने पहली बार हमें दूसरों के जीवन की झलक तो दे दी... लेकिन उनके संघर्षों का पूरा संदर्भ नहीं। यही कारण है कि मानसिक स्वास्थ्य पर काम करने वाले विशेषज्ञ आज डिजिटल वेल-बीइंग को शारीरिक स्वास्थ्य जितना ही महत्वपूर्ण मानने लगे हैं।

बेंगलुरु के एक क्लिनिकल मनोवैज्ञानिक शशांक तोलपड़े का कहना - 'समस्या यह नहीं कि युवा ऑनलाइन हैं। समस्या यह है कि उन्हें ऑफलाइन होने का अपराधबोध होने लगा है।'

यह वाक्य सुनने में साधारण लगता है। लेकिन यदि आप किसी किशोर का एक दिन देखें, तो उसका अर्थ स्पष्ट हो जाता है। मोबाइल दूर रखो... तो डर लगता है कि कहीं कुछ छूट न जाए। उत्तर देर से दो... तो लगता है सामने वाला नाराज़ हो जाएगा। कुछ पोस्ट न करो... तो लगता है लोग भूल जाएंगे।

यह केवल तकनीक नहीं है। यह हर समय उपस्थित रहने का सामाजिक दबाव है। लेकिन यदि कहानी यहीं समाप्त हो जाए, तो हम जेन जेड के साथ अन्याय करेंगे। क्योंकि यही पीढ़ी मानसिक स्वास्थ्य पर सबसे खुलकर बात भी करती है। यही पीढ़ी थेरेपी को कलंक नहीं मानती। यही पीढ़ी अपने मित्र से केवल यह नहीं पूछती - 'क्या हाल है?'

वह पूछती है -'तुम सचमुच कैसे हो?' इन दो प्रश्नों के बीच का अंतर छोटा दिखाई देता है। लेकिन सामाजिक दृष्टि से यह एक बड़ी छलांग है। कुछ वर्ष पहले तक परिवारों में अवसाद, चिंता, अकेलापन या भावनात्मक संकट पर खुलकर बातचीत बहुत कम होती थी। आज अनेक युवा अपने अनुभव सार्वजनिक रूप से साझा करते हैं। सहायता मांगने में संकोच कम करते हैं। और मानसिक स्वास्थ्य को भी स्वास्थ्य का ही हिस्सा मानते हैं। यह परिवर्तन भी उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना सोशल मीडिया का प्रभाव। क्योंकि हर परिवर्तन की तरह इस कहानी का भी दूसरा पक्ष है। यहीं मुझे जयपुर का आरव याद आता है। कुछ महीने पहले उसने अपने मित्रों के साथ एक छोटा-सा नियम बनाया।

मैं कौन हूं?

पहचान, राष्ट्र और वैश्विक नागरिकता के बीच जेन जेड की तलाश

रात के लगभग दस बजे हैं।

जयपुर का आरव अपने कमरे में बैठा है। लैपटॉप की स्क्रीन पर एक ऑनलाइन चर्चा चल रही है। प्रतिभागी पांच देशों से जुड़े हैं - भारत। जापान। ब्राज़ील। जर्मनी। और केन्या।

विषय है - 'Climate Innovation for the Future.'

चर्चा अंग्रेज़ी में हो रही है। आरव अपने विचार रखता है। ब्राज़ील की एक छात्रा सहमति जताती है। जर्मनी का एक शोधार्थी नया आंकड़ा साझा करता है। जापान का प्रतिभागी एक तकनीकी समाधान सुझाता है। बैठक समाप्त होती है। आरव लैपटॉप बंद करता है।

उसी समय रसोई से उसकी मां की आवाज़ आती है- 'कल दादी के साथ मंदिर जाना मत भूलना।' कुछ ही क्षण बाद परिवार के व्हाट्सऐप समूह में संदेश आता है - 'रक्षाबंधन 28 अगस्त को है।'

कुछ मिनट पहले वह एक वैश्विक संवाद का हिस्सा था। अब वह अपने परिवार, अपनी भाषा और अपनी परंपरा के बीच लौट आया है। क्या इन दोनों के बीच कोई विरोध है? या यही इक्कीसवीं सदी के भारतीय युवा की सबसे स्वाभाविक वास्तविकता है? पिछली पीढ़ियों की पहचान अपेक्षाकृत सरल थी। मनुष्य पहले अपने गांव का होता था। फिर शहर का। फिर राज्य का। और अंततः राष्ट्र का। दुनिया उससे बहुत बाद में जुड़ती थी।

जेन जेड का क्रम अलग है। वह एक ही दिन में स्थानीय भी है। राष्ट्रीय भी। और वैश्विक भी। सुबह वह कोरियाई संगीत सुन सकती है। दोपहर में भारतीय संविधान पर बहस कर सकती है। शाम को किसी अमेरिकी विश्वविद्यालय का व्याख्यान देख सकती है। और रात को दादी से रामायण की कथा सुन सकती है। यह विरोधाभास नहीं है। यह एक नई सांस्कृतिक संरचना है।

श्रीनगर की ज़ोया कहती है - 'मैं कश्मीरी भी हूं, भारतीय भी हूं, और मुझे लगता है कि मैं दुनिया की नागरिक भी हूं। इन तीनों में मुझे कोई टकराव नहीं दिखता।'

चेन्नई की पूर्णिमा नायर का उत्तर अलग है - 'मेरे लिए भाषा पहचान का सबसे बड़ा आधार है। मैं दुनिया में कहीं भी रहूं, तमिल मेरे भीतर रहेगी।'

दंतेवाड़ा की कविता मुस्कुराकर कहती है - 'पहले लगता था कि हमारा गांव दुनिया से बहुत दूर है। अब मोबाइल खोलते ही लगता है कि दुनिया हमारे गांव तक आ गई है।'

ध्यान दीजिए। तीनों उत्तर अलग हैं। लेकिन तीनों में एक साझा सूत्र है - पहचान अब एकवचन

रविवार की शाम। दो घंटे। न मोबाइल। न गेम। न सोशल मीडिया। सिर्फ बातचीत। पहले सप्ताह सबको अजीब लगा। दूसरे सप्ताह बेचैनी हुई। तीसरे सप्ताह उनमें से एक मित्र अचानक बोला - 'यार... इतने लंबे समय बाद ऐसा लगा कि हम सचमुच मिले हैं।' घटना छोटी है। लेकिन शायद हमारे समय के सबसे बड़े संकेतों में से एक भी। तकनीक ने संबंधों को समाप्त नहीं किया।

उसने केवल हमें यह याद दिलाया कि संबंधों की सबसे बड़ी तकनीक आज भी मनुष्य ही है। शायद इसी कारण जेन जेड की सबसे बड़ी खोज प्रेम नहीं... विश्वास है। सबसे बड़ी आवश्यकता लोकप्रियता नहीं... अपनापन है। सबसे बड़ी आकांक्षा लाखों फॉलोअर्स नहीं... ऐसे कुछ लोग हैं, जिनके सामने बिना किसी फिल्टर के जिया जा सके। शायद यही खोज इस पीढ़ी को फिर से मनुष्य बनाती है।

लेकिन कहानी यहीं समाप्त नहीं होती। यदि रिश्ते बदल रहे हैं... तो पहचान भी बदल रही होगी। क्या धर्म, राष्ट्र, भाषा, लिंग, समुदाय और संस्कृति को देखने का उनका दृष्टिकोण भी अलग है?

क्या वे स्वयं को पहले भारतीय मानते हैं... या पहले वैश्विक नागरिक?

क्या वे परंपरा को अस्वीकार कर रहे हैं... या उसका नया अर्थ गढ़ रहे हैं?

यहीं से हमारी यात्रा जेन जेड की सबसे जटिल परत की ओर बढ़ती है - पहचान की खोज।

नहीं रही। वह बहुवचन हो गई है।

समाजशास्त्री मैनुअल कैस्टेल्स ने The Rise of the Network Society में लिखा था कि डिजिटल युग में मनुष्य की पहचान केवल भूगोल से नहीं, बल्कि नेटवर्कों से भी निर्मित होगी। इक्कीसवीं सदी के भारत में यह विचार अनेक स्तरों पर साकार होता दिखाई देता है। एक युवा नागालैंड का लोकसंगीत सुन सकता है। जापानी एनीमे का प्रशंसक हो सकता है। संस्कृत सीख सकता है। और साथ ही AI स्टार्टअप पर काम भी कर सकता है।

इतनी विविध सांस्कृतिक परतों का यह सहज सह-अस्तित्व पहले शायद ही कभी देखने को मिला हो। लेकिन इसी परिवर्तन ने एक नया प्रश्न भी जन्म दिया है। क्या वैश्विक होना... अपनी जड़ों से दूर होना है? भारत में यह प्रश्न विशेष महत्व रखता है।

क्योंकि भारत केवल एक राजनीतिक राष्ट्र नहीं है। वह एक जीवित सभ्यता भी है। यहां परिवार केवल सामाजिक संस्था नहीं। सांस्कृतिक स्मृति का सबसे बड़ा वाहक भी है। यहां त्योहार केवल अवकाश नहीं होते। वे पीढ़ियों के बीच संवाद का सेतु भी होते हैं।

इसीलिए भारत में जेन जेड की कहानी यूरोप या अमेरिका की कहानी से भिन्न है। भारतीय युवा का संघर्ष केवल आधुनिकता और परंपरा के बीच नहीं है। वह दो अलग-अलग समय-धाराओं के बीच खड़ा है। एक समय... जो उसकी स्क्रीन पर हर सेकंड बदल रहा है। और दूसरा... जो उसके घर की दीवारों, लोककथाओं, भाषाओं और पारिवारिक स्मृतियों में पीढ़ियों से जीवित है। वरिष्ठ पत्रकार संजय श्रीवास्तव का कहना है - 'भारत का युवा पश्चिम की तरह अपनी परंपराओं को छोड़ नहीं रहा। वह उन्हें पुनर्परिभाषित कर रहा है।'

शायद यही इस पूरी आवरण कथा का सबसे महत्वपूर्ण अवलोकन है। यदि यह सच है, तो जेन जेड सांस्कृतिक विघटन की नहीं... एक नए सांस्कृतिक संश्लेषण की पीढ़ी है। लेकिन प्रश्न अभी भी शेष है। क्या सोशल मीडिया पहचान को सुदृढ़ कर रहा है... या उसे खंडित?

क्या डिजिटल समुदाय नए समाज बना रहे हैं... या मनुष्य को छोटे-छोटे वैचारिक द्वीपों में विभाजित कर रहे हैं? और सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न - क्या जेन जेड स्वयं को पहले भारतीय मानती है... या पहले वैश्विक नागरिक?

शायद इस प्रश्न का उत्तर 'या' में नहीं, 'और' में छिपा है। क्योंकि पहचान किसी पासपोर्ट से निर्मित नहीं होती। वह स्मृतियों से बनती है। भाषा से। इतिहास से। मूल्यों से। और उस भविष्य की साझा कल्पना से, जिसे एक समाज मिलकर गढ़ना चाहता है। शायद पहली बार जेन जेड इन सभी स्तरों को एक साथ जीने का प्रयास कर रही है। और यही उसे अपने समय की सबसे जटिल, सबसे बहुपरत और शायद सबसे निर्णायक पीढ़ी बनाता है।

किसी भी सभ्यता को उसके अपने समय में पहचानना लगभग असंभव होता है। औद्योगिक क्रांति के दौर में किसी ने स्वयं को 'औद्योगिक युग का नागरिक' नहीं कहा था। दो विश्वयुद्धों के बीच जी रहे लोगों को भी यह आभास नहीं था कि वे विश्व-व्यवस्था का नया मानचित्र लिख रहे हैं। इंटरनेट के शुरुआती वर्षों में भी बहुत कम लोगों ने कल्पना की होगी कि वही तकनीक एक दिन मानव संबंधों, राजनीति, अर्थव्यवस्था, शिक्षा और संस्कृति की सबसे निर्णायक शक्ति बन जाएगी। इतिहास की सबसे बड़ी घटनाएँ प्रायः तब साधारण दिखाई देती हैं, जब वे घट रही होती हैं; उनकी असाधारणता का बोध बाद की पीढ़ियाँ करती हैं। संभव है, आज हम भी ऐसे ही एक ऐतिहासिक मोड़ पर खड़े हों।

इस पूरी यात्रा में हमने अनेक चेहरों से परिचय किया— जयपुर का आरव, चेन्नई की मीरा, श्रीनगर की ज़ोया, दंतेवाड़ा की कविता, कोटा का राघव और मुंबई की अदिति। उनकी भाषाएँ अलग हैं, संस्कृतियाँ अलग हैं और जीवन की परिस्थितियाँ भी भिन्न हैं। फिर भी उन्हें जोड़ने वाला एक अदृश्य सूत्र है। उन्होंने ऐसी दुनिया में आँखें खोलीं, जहाँ इंटरनेट हवा की तरह सर्वव्यापी था। जहाँ कृत्रिम बुद्धिमत्ता भविष्य नहीं, वर्तमान थी। जहाँ मित्रता भूगोल से परे जा रही थी। जहाँ करियर किसी एक नौकरी का नहीं, बल्कि निरंतर सीखने की प्रक्रिया का नाम बनता जा रहा था। और जहाँ पहचान केवल जन्म या भूगोल से नहीं, बल्कि नेटवर्क, समुदाय और अनुभवों से भी निर्मित होने लगी थी। यही साझा अनुभव उन्हें एक पीढ़ी बनाते हैं।

लेकिन क्या इसका अर्थ यह है कि जेन जेड पिछली पीढ़ियों से बेहतर है? बिल्कुल नहीं। क्या इसका अर्थ यह है कि पुरानी पीढ़ियाँ अप्रासंगिक हो चुकी हैं? यह भी नहीं। हर पीढ़ी अपने समय की परिस्थितियों की संतान होती है। स्वाधीनता आंदोलन की पीढ़ी ने हमें राजनीतिक स्वतंत्रता दी। राष्ट्र-निर्माण की पीढ़ी ने संस्थाएँ खड़ी कीं। आर्थिक उदारीकरण की पीढ़ी ने अवसरों के नए द्वार खोले। और अब जेन जेड उस भारत का निर्माण करेगी, जो कृत्रिम बुद्धिमत्ता, जैव-प्रौद्योगिकी, जलवायु परिवर्तन और वैश्विक परस्पर-निर्भरता के युग में साँस लेगा। हर पीढ़ी अपने पूर्वजों की उत्तराधिकारी भी होती है और भविष्य की पूर्वज भी।

इसलिए इस पूरी यात्रा का सबसे बड़ा प्रश्न कभी यह नहीं था कि जेन जेड सही है या गलत। प्रश्न यह है कि क्या हम उसे समझने का धैर्य रखते हैं? क्योंकि पीढ़ियों के बीच सबसे बड़ी दूरी विचारों की नहीं, अनुभवों की होती है। जो पिता अपने बेटे को मोबाइल स्क्रीन में डूबा देखते हैं, वे उसके भीतर

नई सभ्यता के प्रथम नागरिक

मशीनों के युग में मनुष्य होने का अर्थ

चल रही उस दुनिया को नहीं देख पाते, जहाँ वह सीख भी रहा है, संवाद भी कर रहा है और अपनी पहचान भी गढ़ रहा है। दूसरी ओर, जो युवा अपने माता-पिता को 'पुराना' कहकर उनकी बातों को टाल देता है, वह यह भूल जाता है कि उसी पीढ़ी ने वह भारत बनाया, जिसकी नींव पर उसके सपनों की इमारत खड़ी है। संवाद तभी जन्म लेता है, जब दोनों एक-दूसरे के अनुभवों को सम्मानपूर्वक स्वीकार करते हैं।

भारत के सामने भी यही चुनौती है। विश्व की सबसे युवा आबादी वाले देशों में होना पर्याप्त नहीं; युवाओं को समझना उससे कहीं अधिक आवश्यक है। यदि हमारी शिक्षा-व्यवस्था बदलती दुनिया की गति को नहीं समझेगी, यदि परिवार संवाद खो देंगे, यदि नीति-निर्माता युवाओं को केवल आँकड़ों में देखेंगे और यदि तकनीक नैतिकता से अलग हो जाएगी, तो हमारी सबसे बड़ी जनसांख्यिकीय शक्ति भी अवसर के बजाय संकट बन सकती है। लेकिन यदि यही युवा विज्ञान, जिज्ञासा, उद्यमिता, करुणा और सांस्कृतिक आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़े, तो भारत की अगली शताब्दी का इतिहास बिल्कुल अलग लिखा जाएगा।

इसीलिए जेन जेड को समझना केवल युवाओं को समझना नहीं है; यह भारत के भविष्य को समझना है। 2047 का भारत उन्हीं हाथों से निर्मित होगा, जो आज मोबाइल स्क्रीन पर स्क्रॉल कर रहे हैं; उन्हीं आँखों से, जो कृत्रिम बुद्धिमत्ता के साथ सीख रही हैं; और उन्हीं मस्तिष्कों से, जो दुनिया को पहले से अलग ढंग से देख रहे हैं। डिजिटल शोर के बीच भी यही पीढ़ी अर्थपूर्ण संबंध, उद्देश्यपूर्ण जीवन और बेहतर भविष्य की तलाश में है।

इस आवरणकथा की शुरुआत एक प्रश्न से हुई थी—क्या जेन जेड नई सभ्यता की पहली पीढ़ी है? इस यात्रा के अंत में भी हम उसी प्रश्न के सामने खड़े हैं, किंतु अब उसका अर्थ बदल चुका है। यह अब केवल तकनीक का नहीं, बल्कि मनुष्य का प्रश्न है। सभ्यताएँ मशीनों से नहीं बनतीं; वे मनुष्यों से बनती हैं। तकनीक उन्हें गति दे सकती है, दिशा नहीं। दिशा का निर्धारण सदैव मनुष्य ही करता है।

संभव है, आने वाले वर्षों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता और अधिक शक्तिशाली हो जाए। रोबोट हमारे सहकर्मी बन जाएँ। आभासी और वास्तविक संसार की सीमाएँ धुँधली पड़ जाएँ। विश्वविद्यालय, व्यवसाय और राजनीति के स्वरूप बदल जाएँ। फिर भी एक प्रश्न वैसा ही रहेगा, जैसा हजारों वर्ष पहले था—मनुष्य होना क्या है? शायद जेन जेड पहली ऐसी पीढ़ी है, जिसे इस प्रश्न का उत्तर केवल दर्शनशास्त्र में नहीं, बल्कि अपने दैनिक जीवन, अपने निर्णयों और अपनी डिजिटल उपस्थिति में देना होगा। यही उसकी सबसे बड़ी चुनौती है और शायद यही उसका ऐतिहासिक दायित्व भी।

जब भविष्य का कोई इतिहासकार इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक की ओर मुड़कर देखेगा, तो संभव है कि वह अपने वृत्तांत की शुरुआत किसी युद्ध, किसी चुनाव या किसी तकनीकी आविष्कार से न करे। संभव है, वह केवल इतना लिखे—'यही वह समय था, जब मनुष्य ने पहली बार मशीनों के साथ केवल रहना नहीं, बल्कि उनके साथ मिलकर स्वयं को पुनर्परिभाषित करना शुरू किया। उस परिवर्तन का पहला साक्षी एक पीढ़ी थी, जिसे दुनिया जेन जेड के नाम से जानती थी।'

तब शायद हमें भी समझ में आएगा कि इन वर्षों में हम केवल एक नई पीढ़ी को बड़ा होते नहीं देख रहे थे। हम एक नए भारत के उदय और एक नई सभ्यता की पहली आहट के साक्षी थे—ऐसी सभ्यता, जहाँ तकनीक और मनुष्यता का संबंध प्रतिस्पर्धा का नहीं, बल्कि सह-अस्तित्व का होगा। यदि आने वाले समय में भी यह प्रश्न जीवित रहा कि 'मशीनों के बीच मनुष्य कैसे बना रहे?', तो सभ्यता भी जीवित रहेगी। शायद यही इस पूरी यात्रा का सबसे बड़ा निष्कर्ष है।

डॉ. संजय जायसवाल

सभ्यता का नया व्याकरण

परंपरा और तकनीक के संगम पर खड़ी जेन जेड

जेन जेड केवल इंटरनेट और सोशल मीडिया की पीढ़ी नहीं, बल्कि बदलती मानवीय चेतना, तकनीकी संस्कृति और वैश्विक नागरिकता का नया प्रतीक है। यह पीढ़ी परंपरा और आधुनिकता के बीच संवाद स्थापित करते हुए डिजिटल माध्यमों से सामाजिक परिवर्तन, वैचारिक अभिव्यक्ति और भविष्य की नई सभ्यता का आधार रच रही है।

मानव सभ्यता का इतिहास बदलावों और विविधताओं से भरा है। हर युग की अपनी कुछ खास किस्म की विशेषताएं होती हैं, जिनकी वजह से हम उस युग को 'डिकोड' करते हैं। आज पूरी दुनिया का वृत्त लगभग आठ पीढ़ियों (जेनरेशन) से बनता है। हालांकि जिस जेनरेशन की चर्चा इन दिनों आम है- वह है जेन जेड। इस पीढ़ी की सक्रियता गौरतलब है। इस पीढ़ी की यह सक्रियता समाज के जमीनी धरातल पर कम जरूर है पर सोशल साइट्स एवं तकनीकी स्तर पर उल्लेखनीय है। इस पीढ़ी की सोचने, समझने और जीने की शैली परंपरागत पीढ़ी से भिन्न एवं ज्यादा पारदर्शी है। यह पीढ़ी दो शताब्दियों की आहटों के बीच पला और बढ़ा है।

जेन जेड की खास बात यह है कि इस पीढ़ी ने भौगोलिक दूरियों को लगभग पाट दिया है। इनकी जीवन शैली किसी सांस्कृतिक और सामाजिक फ्रेम की मोहताज नहीं है। यह पीढ़ी पूरी दुनिया में मुख्यतः अपनी निजता, पहचान और गतिविधियों की एकरूपता के बीच आकार लेती है। आज हम देख सकते हैं कि हमारे देश के एक सुदूर छोटे से गांव में रहने वाला जेन जेड (1997-2012 के बीच जन्मा) से लेकर मेट्रोपॉलिटन शहर की सुविधाओं से लैस यह जेन जेड पीढ़ी रात के सन्नाटे में भी स्क्रीन पर दुनिया से बतकही करती है।

फैंटेसी और रियलिटी के युग्म से जुड़ा यह जेन जेड अपने स्मार्टफोन से दुनिया नापने की जुगत में लगा है। एक ओर उसके पास ख्वाबों के ऐसे पंख हैं, जिनसे वह दुनिया भर की दूरी को अपने हिसाब से नाप लेना चाहता है। वहीं दूसरी ओर जीवन की कल्पनाओं से इतर हमारे समाज की विसंगतियाँ और अंतर्विरोध हैं, जहां वह खुद को घिरा और ठगा महसूस करता है। जूमर्स के नाम से जानी जाने वाली इस पीढ़ी की आस्था ईश्वर से ज्यादा गूगल, चैट जीपीटी, सोशल मीडिया, अफवाह, सनसनी और फैंटसी से है। वह ईश्वर या अपनी पूर्ववर्ती दुनिया के करीब जाकर उन्हें जानने की जगह उसे 'सर्च इंजन' में तलाशता है। अकेले रहते हुए भी यह पीढ़ी दुनिया भर की समस्याओं और जानकारियों से 'कनेक्ट' है।

'जेन जेड' मानव सभ्यता को सबसे ज्यादा उम्मीद और स्पष्टता के साथ जीने वाली पीढ़ी है। यह पीढ़ी एल्गोरिदम के मानकों के अनुरूप आचरण करती है। यह संवेदना से ज्यादा यांत्रिक सूचनाओं से प्रभावित है। यही वजह है कि यह एक सीमा के बाद ठहर जाती है या 'मूव ऑन' कर लेती है।

यह पीढ़ी इतिहास, परंपरा, अतीत से ज्यादा वर्तमान की उपभोक्तावादी सच्चाई के साथ खड़ी है। इसका इतिहास और परंपरा से विशेष लगाव नहीं है। वह उन स्मृतियों से एलिमिनेट है, जिनसे अतीत और इतिहास से जुड़ाव का अनुभव होता है। इसलिए यह पीढ़ी ऐसे एलिमिनेटेड यथार्थ को नहीं ढोना चाहती है। यह पीढ़ी अपने समय की आहटों, जरूरतों, बदलावों और जीवन शैली को अपना सच मान कर उन्हें अपनाती है। इस पीढ़ी की एक विशेषता यह भी है कि यह त्वरित परिणाम के प्रति सजग है। इसके पास धैर्य की छोटी सीमा होती है। उस सीमा के बाद यह पीढ़ी 'रिएक्ट' करती है। यह भले सामाजिक स्तर पर संगठित न हो परंतु किसी भी मुद्दे पर यह पीढ़ी सोशल साइट्स पर एक बड़ा जनमत तैयार करने का माद्दा रखती है। तकनीक प्रेमी होने के साथ ये लोग तमाम सोशल साइट्स पर स्पष्टता और निर्भीकता के साथ 'परिवर्तन का अधि-वृत्तांत' की बात करते हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण नेपाल में हुए आंदोलन और सत्ता परिवर्तन का मामला है।

जेन जेड पीढ़ी एक्स (ट्विटर), इंस्टाग्राम और टिक-टॉक जैसे पटलों पर अपनी सक्रियता से ऐसे बदलावों की पृष्ठभूमि तैयार करती है। भारत में भी जेन जेड का एक बड़ा तबका राजनीतिक, धार्मिक, वैदेशिक, आर्थिक, रोजगारमूलक एवं सामाजिक मुद्दों पर 'मीम्स' और 'कंटेंट डिजाइन' कर असहमति और प्रतिरोध की जमीन तैयार कर रही है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण 'कॉकरोच जनता पार्टी' का आंदोलन है। इतना ही नहीं भारत में सोनम वांग्चुक के पर्यावरण संरक्षण और जलवायु के मुद्दे को लेकर चलाए गए आंदोलन को जेन जेड का भरपूर सहयोग मिला। हम वैश्विक स्तर पर देखेंगे तो पाएंगे कि स्वीडन की पर्यावरण एक्टिविस्ट ग्रेटा थनबर्ग से प्रभावित होकर दुनियाभर के जेन जेड ने 'फ्राइडे फ़ार फ्यूचर' नामक आंदोलन शुरू किया। जिसका असर पूरी दुनिया में दिखा।

आज जेन जे की छवि भले ज़ूमर्स पीढ़ी के तौर पर गढ़ी गई हो। परंतु सच यह है कि आज यह पीढ़ी पूरी दुनिया में नस्लवाद, हिंसा, महिला अधिकार, जेंडर इक्वालिटी एवं भ्रष्टाचार के ख़िलाफ़ अपने डिजिटल कौशल से सोशल मीडिया पर जागरूकता फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

यह पीढ़ी अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी की तुलना में ज़्यादा मुखर एवं स्पष्टवादी है। यह पीढ़ी शील, संकोच और मर्यादा के नाम पर जबरन थोपे जा रहे रिश्तों को छिपाने और इरेज करने की जगह उनसे दूरी बनाने में विश्वास करती है। इनके यहां जो कुछ भी जो अनिच्छित हैं, उन्हें अस्वीकार करने में यह पीढ़ी बिलकुल नहीं झिझकती है। हालांकि इस पीढ़ी के आरंभिक काल के कुछ ऐसे भी नौजवान हैं जिनमें कुछ हद तक मिलेनियम में पैदा हुए लोगों की विशेषताएं देखी जा सकती हैं। यही वजह है कि कुछ जानकर लोग इस पीढ़ी को मिलेनियम पीढ़ी का एक एक्सटेंडेड हिस्सा मानते हैं।

हिंदी साहित्य में नौजवानों को लेकर बहुत सकारात्मक बातों का उल्लेख मिलता है। 'रामायण' में वर्णित राम के विश्वविजय पर निकले अश्वमेध यज्ञ के घोड़े का वल्गा नई पीढ़ी के लव-कुश ने ही थामा था। यानी युवा पीढ़ी ही दुनिया में बदलाव की क्षमता रखता है। प्रसिद्ध जनकवि नागार्जुन ने भी नई पीढ़ी में आस्था प्रकट करते हुए किशोरों की अगवानी की बात कही है। ऐसे में यह कहना गलत नहीं होगा कि आज की 'जेन जेड' पीढ़ी सिर्फ आभासी पटल की दुनिया के वासी नहीं हैं। बल्कि सच यह है कि वे आभासी दुनिया के रास्ते वास्तविक दुनिया को बदलने का स्वप्न भी देख रहे हैं।

जेन जेड आत्मतुष्ट होकर भी नागरिक बोध के भाव से भरा है। स्वकेंद्रित होकर भी सामाजिकता की ओर देखता है। दैहिक सुखवाद के बीच भी वह प्रेम की शीतलता को अनभुव और अभिव्यक्त करता है। अनुभवहीनता के बीच भी वह संवाद की ओर बढ़ता है। वह अपनी दुनिया को बेहतर बनाने के लिए भले तेज दौड़ रहा है, पर उसकी यह दौड़ बहुत हद तक जमीन पर ही जारी है।

यह पीढ़ी जोखिम को गले लगाती है। निश्चितता की जगह अनिश्चितता के बीच जीवन जीने का स्वप्न देखती है। परंपरागत मान्यताओं की जगह नए विचारों का खुले मन से स्वागत करती है। हालांकि खुले मन को कई अवसरों पर धार्मिक श्रेष्ठता, छद्म राष्ट्रवाद और सांस्कृतिक एकरूपता के नाम पर बांधने की कोशिश भी की जाती रही है। बावजूद इसके जेन जेड शुद्धतावाद की जगह एक समावेशी 'कॉमन परिसर' की बात करती है। यह सिर्फ सूचनाओं का उपयोग नहीं करती बल्कि अपनी सभ्यता को संरक्षित करने और उसे सुंदर और मानवीय बनाने का स्वप्न भी बुनती है। यह अपने समय के बदलावों में बिखरने की जगह, उनमें अपने लिए अवसर तलाशती है। 'जेन जेड' किसी सभ्यता का अंत नहीं बल्कि एक नई सभ्यता के निर्माण का प्रस्थान बिंदु है।

लेखक विद्यासागर विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर हैं तथा एक सांस्कृतिककर्मी के रूप में जाने जाते हैं, वह सांस्कृतिक पुनर्निर्माण मिशन के तहत युवाओं को साहित्य व संस्कृति से जोड़ने का लगातार कार्य कर रहे हैं।

स्याही, सत्ता और सत्य

संजय श्रीवास्तव

भारतीय पत्रकारिता आज एक ऐसे रणक्षेत्र में खड़ी है जहां सत्य अब वस्तुनिष्ठ नहीं, बल्कि गुटीय निष्ठाओं का बंधक है। 'मोदी', 'गोदी' और 'बुद्धि' मीडिया के त्रि-आयामी विभाजन ने सूचना के उस पवित्र अधि-वृतांत को सदैव के लिए विखंडित कर दिया है।

आधुनिक भारतीय जनसंचार का परिदृश्य आज एक ऐसे बिंदु पर खड़ा है, जहां वस्तुनिष्ठता केवल शब्दकोश की एक निर्जीव इकाई बनकर रह गई है। सोशल मीडिया के गलियारों में गूंजता एक सरल सा प्रश्न— 'आप किस पक्ष से हैं?' - वस्तुतः उस प्रलयंकारी ध्रुवीकरण का आधिकारिक प्रतिवेदन है, जिसने सूचना तंत्र को तीन स्पष्ट श्रेणियों में विभाजित कर दिया है।

प्रथम श्रेणी 'मोदी मीडिया' की है, जो सत्ता के प्रभामंडल में इस कदर सम्मोहित है कि वह आलोचनात्मक दृष्टि को पूर्णतः विसर्जित कर चुकी है। द्वितीय श्रेणी, जिसे विद्रूप भाव से 'गोदी मीडिया' की संज्ञा दी गई है, वह है जो निरंतर सरकार की घेराबंदी को ही अपना एकमात्र धर्म मानती है, किंतु प्रतिपक्ष की विसंगतियों पर रहस्यमयी मौन धारण कर लेती है। ये अक्सर डीप स्टेट के उस विमर्श का हिस्सा बनते हैं जहां वैश्विक सांख्यिकी के माध्यम से राष्ट्रीय छवि को धूमिल करना ही बौद्धिकता का मापदंड माना जाता है। तृतीय और लुप्तप्राय श्रेणी 'बुद्धि मीडिया' की है, स्वतंत्र पत्रकारिता का वह विरल टापू जो प्रत्येक विषय को उसके गुण-दोष की निष्पक्ष कसौटी पर कसता है। विडंबना यह है कि आज के रणक्षेत्र में तटस्थता को सेक्युलर या भगवा के द्वि-आधारी खांचों में जबरन ठूंसा जा रहा है।

प्रिंट युग का स्वर्णकाल

1975 के आपातकाल की 51वीं वर्षगांठ का यह कालखंड हमें उस यात्रा के पुनरावलोकन का अवसर प्रदान करता है, जहां पत्रकारिता का अर्थ केवल स्याही और साहस था। वह युग प्रिंट की निर्विवाद संप्रभुता का था। रेलवे स्टेशनों के ए.एच. व्हीलर बुक स्टाल उन पत्रिकाओं और समाचार पत्रों से आप्लावित रहते थे, जो समाज की बौद्धिक क्षुधा को शांत करते थे। मुंबई, जो भारतीय मीडिया का मक्का रहा है, वहां से 'बिजनेस इंडिया' जैसे प्रकाशनों ने व्यावसायिक पत्रकारिता का जो मानदंड स्थापित किया, वह आज भी शोध का विषय है। उस दौर के न्यूजरूम में विदेशी डिग्रियों और एमबीए धारकों का समागम एक ऐसी नवीन ऊर्जा का संचार करता था, जो आज के शोर-शराबे वाले समाचार कक्षों में अनुपस्थित है।

अतीत में, लेख टाइपराइटर पर अंकित किए जाते थे, जहां टंकणकर्ताओं का दल दोहरे अंतराल और चौड़े हाशियों के साथ कहानियां तैयार करता था ताकि संपादन के लिए पर्याप्त मानसिक और भौतिक स्थान उपलब्ध हो सके। यह धीमी गति पत्रकारिता में 'गहन चिंतन' की अनिवार्यता का साक्ष्य थी।

तकनीकी विवर्तन और मौलिकता का अवसान

तकनीक ने निस्संदेह पत्रकारिता के भूगोल को विस्तृत किया है, किंतु उसकी आत्मा को संकुचित कर दिया है। आज का पत्रकार लैपटॉप और स्मार्टफोन के माध्यम से सूचनाओं का प्रवेग तो प्राप्त कर लेता है, किंतु वह उस मौलिक परिश्रम से वंचित है जो पुस्तकालयों की धूल और कतरन फाइलों के अन्वेषण से प्राप्त होता था। 'चैटजीपीटी' और 'जेमिनी' जैसे एआई के उपकरणों ने शोध को एक यांत्रिक क्रिया में परिवर्तित कर दिया है। डिजिटलीकरण ने सूचना तक पहुंच को लोकतांत्रिक तो बनाया है, किंतु इसने 'सत्य की गहराई' को वायरल होने की होड़ में विस्थापित कर दिया है।

संस्थागत साहस की गौरवगाथा

भारतीय पत्रकारिता का इतिहास उन व्यक्तिगत और संस्थागत साहस की गाथाओं से भरा है, जिन्होंने सत्ता के अधिनायकवाद को सीधी चुनौती दी। रामनाथ गोयनका के नेतृत्व में इंडियन एक्सप्रेस ने आपातकाल के दौरान संपादकीय स्तंभ को रिक्त छोड़कर जिस 'मौन विद्रोह' का सूत्रपात किया, वह कूटनीतिक प्रतिरोध का चरमोत्कर्ष था। 1981 की 'कमला' वाली जांच, जिसने देह व्यापार के सिंडिकेट का भंडाफोड़ किया, या रिलायंस इंडस्ट्रीज पर किए गए वे प्रहार जिसने कॉर्पोरेट जगत की नींव हिला दी—ये सभी घटनाएं उस युग की परिचायक थीं जब पत्रकारिता एक मिशन थी। अरुण शौरी, बी.जी. वर्गीज और शेखर गुप्ता जैसे संपादकों ने समाचार पत्रों को सत्ता के सम्मुख एक 'डॉग-वॉच' की भांति प्रतिष्ठित किया था।

कॉर्पोरेट अधिग्रहण और विद्रूप समीकरण

1990 के दशक के प्रारंभ में जब औद्योगिक घरानों ने मीडिया व्यवसाय में प्रवेश किया, तो एक नवीन विसंगति उत्पन्न हुई। यद्यपि उन्होंने सर्वोत्तम तकनीक और प्रतिभाओं में निवेश किया, किंतु वे उस विश्वसनीयता को अर्जित करने में विफल रहे जो स्वतंत्र संपादकों की पहचान थी। आज का अधिकांश मीडिया उन्हीं व्यावसायिक समूहों का 'सब्सिडियरी' बनकर रह गया है। इसके परिणामस्वरूप, पत्रकारिता का वह 'रोमांटिसिज्म' लुप्त हो चुका है, जहां सहकर्मियों के मध्य एक अद्भुत भाईचारा और पेशे के प्रति निष्काम अनुराग विद्यमान था। आज डाउनसाइजिंग

और ले-ऑफ एक सामान्य प्रक्रिया बन चुके हैं, जिसने इस पेशे के स्थायित्व को खंडित कर दिया है।

टेलीविजन और सोशल मीडिया

वर्तमान मीडिया परिदृश्य में टेलीविजन समाचारों ने 'सत्य' को एक 'प्रहसन' में परिवर्तित कर दिया है। प्रत्येक संध्या को होने वाली चीख-पुकार और 'हम लुटियंस मीडिया नहीं हैं' का आलाप वस्तुतः उस हीनभावना का प्रकटीकरण है, जो श्रेष्ठ पत्रकारिता की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। समाचार अब सूचना नहीं, बल्कि इंगेजमेंट और टीआरपी का खेल बन चुके हैं। राष्ट्रवाद का संवर्धन प्रशंसनीय है, किंतु पत्रकारिता जब विवेक के स्थान पर केवल उन्माद से संचालित होने लगे, तो वह लोकतन्त्र के लिए आत्मघाती सिद्ध होती है। सोशल मीडिया ने सार्वजनिक विमर्श को इतना विषैला बना दिया है कि वहां संवाद के स्थान

पर केवल व्यक्तिगत और राजनैतिक लांछन ही शेष हैं।

सत्ता तक पहुंच और अहंकार का विखंडन

इस पतन का एक सूक्ष्म राजनैतिक कारण सत्ता के गलियारों तक पत्रकारों की उस सुगम पहुंच का अंत होना भी है, जो पूर्ववर्ती सरकारों के कालखंड में एक अघोषित विशेषाधिकार था। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा प्रेस कॉन्फ्रेंस न करना या विदेशी यात्राओं में पत्रकारों के दल को साथ न ले जाना, उस 'अभिजात पत्रकारिता' के अहंकार पर एक प्रहार था जो स्वयं को नीति-निर्माण का केंद्र मानती थी। यद्यपि इसे लोकतंत्र पर खतरे के रूप में चित्रित किया जाता है, किंतु वास्तविकता यह है कि इसने उस पारंपरिक सांठगांठ को तोड़ दिया है जो सत्ता और मीडिया के मध्य एक ग्रे जोन निर्मित करती थी।

मिशन से ट्रांजिट लाउंज तक

सर्वाधिक चिंताजनक यथार्थ यह है कि आज की युवा पीढ़ी पत्रकारिता को एक करियर के रूप में नहीं, बल्कि एक ट्रांजिट लाउंज के रूप में देखती है। यह वह पड़ाव बन गया है जहां से लोग जनसंपर्क, राजनीति या कॉर्पोरेट संचार की ओर पलायन कर सकें। प्रतिबद्धता, निष्ठा और सत्य की खोज का वह संकल्प अब विरल होता जा रहा है। जब पत्रकारिता केवल एक रोजगार बनकर रह जाए, तो वह इतिहास की प्रथम इबारत लिखने की अपनी सामर्थ्य खो देती है। इतिहास गवाह है, जब चतुर्थ स्तंभ की नींव जर्जर होती है, तो लोकतंत्र का प्रसाद असुरक्षित हो जाता है। आज स्याही की कमी नहीं है, किंतु उस 'दृष्टि' का अकाल है जो धूल के गुबार के पीछे छिपे सत्य को देख सके।

अफ़गानिस्तान और एक असीमित युद्ध का अवसान

विस्मृति की धूल

अगस्त 2021 की वह राख होती शाम, जब काबुल के आकाश पर धुआं और चीखें तैर रही थीं, केवल एक सैन्य वापसी नहीं थी। वह दो दशकों के उस सामरिक संभ्रम का विसर्जन था, जिसने रक्त और अरबों डॉलर की वेदी पर एक मिथ्या भय को पाला था।

कार्टर मलकासियन

आज से पांच वर्ष पूर्व, अफ़गानिस्तान में अमेरिका के बीस वर्षीय युद्ध का एक अत्यंत अशोभनीय अंत हुआ था। अप्रैल 2021 में, संयुक्त राज्य अमेरिका ने अपनी अंतिम सैन्य वापसी प्रारंभ की, जिसका ध्येय सितंबर तक शेष 2,500 सैनिकों को वापस बुलाना था। किंतु नियति की पटकथा कुछ और ही थी। अमेरिकी प्रस्थान के कुछ ही सप्ताह के भीतर, अफ़गान सरकारी सेनाएं रेत के महल की भांति ढह गईं और तालिबान ने एक प्रलयंकारी वेग के साथ प्रांतों पर अधिकार कर लिया। 15 अगस्त 2021 को काबुल की वाशिंगटन समर्थित सरकार का पूर्ण विलोपन हो गया।

सैकड़ों-हजारों भयभीत नागरिकों ने काबुल हवाई अड्डे की घेराबंदी कर ली। अमेरिका और उसके सहयोगियों ने लगभग 1,20,000 लोगों को वहां से निष्कासित किया। उस हृदयविदारक अंतिम प्रहार में, 30 अगस्त को अंतिम सैनिक के प्रस्थान से मात्र चार दिन पूर्व, एक आत्मघाती विस्फोट में 13 अमेरिकी सैनिक बलिदान हो गए। दो दशकों का वह 'वीरतापूर्ण प्रयास' अंततः लज्जा और संशय के कुहासे में विलीन हो गया।

आतंक का प्रेत और सांख्यिकी का छल

उस समय प्रतिशोध और आरोपों की एक बाढ़ सी आ गई थी। वही संगठन, जिसने 9/11 के षड्यंत्रकारियों को शरण दी थी, पुनः सत्ता के सिंहासन पर प्रतिष्ठित था। वैश्विक समुदाय को यह भय सता रहा था कि अफ़गानिस्तान पुनः अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद का केंद्र बन जाएगा। क्रमिक अमेरिकी राष्ट्रपतियों ने सैन्य उपस्थिति को बनाए रखने का तर्क इसी 'सुरक्षित आश्रय' (सेफ हेवन) की अवधारणा पर आधारित रखा था।

किंतु पिछले पांच वर्षों का यथार्थ इन भविष्यवाणियों के सर्वथा विपरीत रहा है। अफ़गानिस्तान की धरती से संयुक्त राज्य अमेरिका के विरुद्ध एक भी आतंकी कृत्य संचालित नहीं हुआ। वाशिंगटन ने इस युद्ध की भट्ठी में लगभग 1 खरब डॉलर स्वाहा कर दिए। 1,20,000 से अधिक अफ़गान नागरिक मारे गए या विरूपित हुए। 7,75,000 से अधिक अमेरिकी सैनिकों ने वहां की धूल फांकी, 20,700 घायल हुए और 2,400 ने अपने प्राणों की आहुति दी—और यह सब एक ऐसे 'खतरे' के विरुद्ध था जो अंततः अतिरंजित और काल्पनिक सिद्ध हुआ।

यदि अमेरिकी अधिकारियों को उस समय वह ज्ञात होता जो आज स्पष्ट है, तो उनमें से अनेक—जिनमें मैं भी सम्मिलित हूं—बहुत पहले ही वापसी की वकालत करते। यह एक अत्यंत असहज स्वीकारोक्ति है, क्योंकि यह हमारे नेतृत्व के विवेक, नीतिगत प्रक्रियाओं की प्रभावकारिता और समूचे प्रयास के नैतिक मूल्य पर एक प्रहारक प्रश्नचिह्न अंकित करती है।

विस्मृति का जोखिम

पांच वर्ष पश्चात, अफ़गानिस्तान में आतंकवाद का पुनरुत्थान उतना बड़ा संकट नहीं है, जितना कि 'सामूहिक विस्मृति' का जोखिम। आज अमेरिका के सार्वजनिक विमर्श में इस दीर्घतम युद्ध का उल्लेख विरल ही होता है। लोग उन बलिदानों को यदा-कदा स्वीकार तो करते हैं, किंतु राष्ट्र उन अंतिम दिनों की विद्रूपता को विस्मृत करने के लिए व्याकुल है। विस्मरण का सबसे खतरनाक स्वरूप वह होगा जब हमारे नेता यह भूल

जाएंगे कि सामयिक भय के वशीभूत होकर भारी क्षति और प्राणों की आहुति स्वीकार करना कितना विनाशकारी सिद्ध हुआ था।

राष्ट्र-निर्माण का छलावा और यथार्थ की जड़ें

7 अक्टूबर 2001 को जब जॉर्ज डब्ल्यू बुश ने 9/11 के प्रतिशोध में आक्रमण किया था, तो कुछ ही महीनों में अल-कायदा का विलोपन और मुल्ला उमर के शासन का पतन हो गया। हामिद करजई के अधीन एक नई सरकार का गठन हुआ और अगले चार वर्ष एक भ्रामक शांति की अवस्था में व्यतीत हुए। इसी प्रारंभिक सफलता ने वाशिंगटन को 2003 में इराक पर आक्रमण करने का दुस्साहस दिया, जिसने अगले पांच वर्षों तक अमेरिका के सामरिक ध्यान को अफ़गानिस्तान से विचलित कर दिया। इस अंतराल में तालिबान ने पुनः स्वयं को संगठित किया और 2006 तक वे अफ़गान सरकार के अस्तित्व के लिए चुनौती बन गए।

उस कालखंड में अमेरिका ग्लोबल वार ऑन टेरर के उन्माद में था। राष्ट्र-निर्माण और लोकतंत्र की स्थापना के महत्वाकांक्षी लक्ष्य यद्यपि घोषित थे, किंतु आतंक का उन्मूलन ही इस समूचे उपक्रम की मूल प्रेरणा थी। वहां तैनात सैनिकों के लिए यही वह नैतिक संबल था जो उनके घावों और क्षतियों को न्यायसंगत बनाता था। किंतु, धरातल पर रणनीति सदैव स्पष्ट नहीं थी। दुर्गम पर्वतों और मरुस्थलों में स्थानीय तालिबान के साथ मुठभेड़ और आईईडी का सामना करना अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद से लड़ने के वैश्विक विमर्श से अत्यंत पृथक और दुरूह कार्य था।

अफ़गानिस्तान से अमेरिकी विदाई के पांच वर्ष पश्चात, न तो वहां से कोई वैश्विक प्रलय प्रस्फुटित हुआ और न ही आतंक का वह सुरक्षित स्वर्ग निर्मित हुआ जिसका भय दिखाया गया था। यह विश्लेषण उस 'सामूहिक विस्मृति' की पड़ताल करता है, जहां राष्ट्र अपनी सामरिक विफलताओं को विस्मरण के कुहासे में छिपाने का प्रयास करते हैं, ताकि भविष्य के दंड से बच सकें।

हेलमंद के अनुभव और रणनीतिक पक्षाघात

2009 से 2011 के मध्य, जब मैं दक्षिणी प्रांत हेलमंद के गारमसेर जिले में एक राजनैतिक अधिकारी के रूप में कार्यरत था, तो वहां का प्रत्येक अफ़गान यही मानता था कि विदेशी सेना की अनुपस्थिति का अर्थ तालिबान की वापसी होगा। किंतु वहां अल-कायदा की सक्रियता के प्रमाण शून्य थे। उस समय अफ़गानिस्तान में 1,00,000 अमेरिकी सैनिकों की उपस्थिति एक ऐसे 'अस्पष्ट खतरे' के विरुद्ध थी जिसका मापन असंभव था।

2012 में मैंने और केल वेस्टन ने तर्क दिया था कि 25,000 सलाहकारों और हवाई सहायता कर्मियों की उपस्थिति अनिवार्य है, अन्यथा मध्य सरकार का नियंत्रण पश्तून क्षेत्रों से समाप्त हो जाएगा। 2013-14 में जब बराक ओबामा ने सैनिकों की संख्या में कटौती प्रारंभ की, तो सांगीन जैसे सामरिक क्षेत्रों में अफ़गान सेना की पराजय ने वाशिंगटन को यह विश्वास दिला दिया कि सरकार स्वयं की रक्षा में अक्षम है। ओबामा के पश्चात डोनाल्ड ट्रम्प ने भी इसी दुविधा का सामना किया: या तो एक असीमित और अनंत उपस्थिति बनाए रखें, या वहां से निर्गत हो जाएं और सरकार के पतन का जोखिम उठाएं।

तालिबान का 'स्वर्ण युग' और आधुनिक विद्रूपता

जब जो बाइडन ने सत्ता संभाली, तो उनके सम्मुख ट्रम्प द्वारा तालिबान के साथ किए गए समझौते का अनुपालन करने की विवशता थी। जनरल मार्क मिले और वरिष्ठ सैन्य अधिकारियों का झुकाव रुकने की ओर था, किंतु बाइडन के लिए कोविड-19 महामारी, चीन के साथ सामरिक प्रतिस्पर्धा और लड़खड़ाती अर्थव्यवस्था कहीं अधिक बड़ी चिंताएं थीं।

अगस्त 2021 में काबुल के पतन के पश्चात, तालिबान ने अपने अमीर, मौलवी हैबतुल्लाह अखुंदजादा के नेतृत्व में शासन प्रारंभ किया। पश्चिमी अधिकारियों को जिस रक्तपात और अराजकता की आशंका थी, उसके स्थान पर तालिबान ने सापेक्षिक स्थिरता का वातावरण निर्मित किया। पिछले पांच वर्षों में अफ़गानिस्तान में वह शांति व्याप्त है जो 1979 के सोवियत आक्रमण के पश्चात कभी नहीं देखी गई। तालिबान ने अपने पूर्व विरोधियों या अमेरिका के साथ कार्य करने वालों का कोई व्यवस्थित नरसंहार नहीं किया।

सर्वाधिक विस्मयकारी विवर्तन अफीम की खेती पर प्रतिबंध रहा। जिस मादक पदार्थ के व्यापार ने दशकों तक युद्ध को वित्तपोषित किया था, उसे 2023 तक 95 प्रतिशत तक समाप्त

कर दिया गया। किंतु इन उपलब्धियों की एक अत्यंत क्रूर मानवीय कीमत भी है। अफ़गान महिलाओं की स्थिति इस आधुनिक युग की सबसे बड़ी विभीषिका है। 2022 के फरमानों ने बालिकाओं की शिक्षा और महिलाओं के कार्य करने के अधिकारों का गला घोंट दिया। जिस पीढ़ी ने दो दशकों तक स्वतंत्रता और शिक्षा का उपभोग किया था, उसे पुनः मध्यकालीन जड़ता के अंधकार में धकेल दिया गया।

एक सैनिक के जीवन का मूल्य

अफ़गानिस्तान युद्ध एक त्रासद काव्य की भांति था। अमेरिका इस संघर्ष में प्रविष्ट होने से बच नहीं सका, किंतु वहां से निकलने का कोई भी सम्मानजनक मार्ग उसे प्राप्त न हो सका। आज अनेक सैनिक इस युद्ध को एक निरर्थक अपव्यय के रूप में देखते हैं। वे उन जनरलों और नीति-निर्माताओं द्वारा छले गए अनुभव करते हैं जिन्होंने उन्हें एक निष्फल युद्ध के रणांगण में झोंके रखा। अगस्त 2021 के सर्वेक्षणों के अनुसार, दो-तिहाई अमेरिकी सैनिक मानते हैं कि अमेरिका अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में विफल रहा। एक सैनिक के जीवन का मूल्य क्या है? युद्ध के अधिकांश समय में वाशिंगटन का यह मानना था कि सुरक्षा का लाभ बलिदान की लागत से अधिक है। आज, कोई भी इस तर्क पर विश्वास करने को तैयार नहीं है। वियतनाम और इराक की भांति ही, समय बीतने के पश्चात यह स्पष्ट हुआ कि यदि हमें परिणाम ज्ञात होते, तो हम इतनी बड़ी आहुति कभी न देते।

अमेरिकियों और उनके नेतृत्व को इस 'परिवर्तित दृष्टिकोण' को कभी नहीं भूलना चाहिए। उन्हें यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि जब वे किसी भावी युद्ध की ओर कदम बढ़ाएं, तो एक बार पीछे मुड़कर अफ़गानिस्तान की उस धूल को अवश्य देखें जो आज भी उन 2,400 बलिदानियों की स्मृतियों पर जमी हुई है। हमें यह सोचना होगाः 'काश, जो मुझे आज ज्ञात है, वह उस समय ज्ञात होता।' इतिहास गवाह है, जब तलवारें विस्मृति की म्यान में सो जाती हैं, तो नियति पुनः वही रक्त रंजित खेल दोहराती है। अफ़गानिस्तान का यह लेखा-जोखा केवल एक पश्चाताप नहीं, बल्कि भविष्य के लिए एक सामरिक चेतावनी है।

विद्युत विवर्तन

संप्रभुता का नया क्षितिज और तारों का कुरुक्षेत्र

संतु दास

दशकों से भारत की ऊर्जा-दृष्टि कोयले की कालिख और तेल की बूंदों में कैद रही है। किंतु, 10 खरब डॉलर की आर्थिक महत्वाकांक्षा अब ईंधन नहीं, अपितु विद्युत के प्रवेग से संचालित होगी। यह केवल एक तकनीकी विस्थापन नहीं, बल्कि सभ्यतागत विवर्तन है।

दशकों तक भारत में ऊर्जा का विमर्श केवल ईंधन की उपलब्धता के इर्द-गिर्द घूमता रहा। कोयले की कमी, कच्चे तेल की अस्थिर कीमतें, आयातित प्राकृतिक गैस पर निर्भरता और भू-राजनीतिक झटकों ने नीतिगत बहसों पर अधिपत्य बनाए रखा। क्रमिक सरकारों ने ऊर्जा सुरक्षा का मापदंड आयातित तेल के बैरल, खनन किए गए कोयले के टन और निर्मित सामरिक पेट्रोलियम भंडारों से मापा। किंतु, वह समीकरण अब तीव्र गति से अप्रासंगिक हो रहा है। भारत का अगला ऊर्जा संकट पेट्रोल की कमी से नहीं, बल्कि एक अधिक मौलिक प्रश्न से उत्पन्न होगाः क्या राष्ट्र अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए पर्याप्त विद्युत का उत्पादन, संचयन और वितरण कर सकता है?

जैसे-जैसे भारत आगामी दशकों में 10 खरब डॉलर की अर्थव्यवस्था बनने की ओर अग्रसर है, यह तेल नहीं, बल्कि विद्युत होगी जो विकास की गति निर्धारित करेगी। राष्ट्र का विकास मॉडल अब पूर्णतः इलेक्ट्रिक हो रहा है। आंतरिक दहन इंजन का स्थान अब इलेक्ट्रिक कारें (ईवी) ले रही हैं। बढ़ते तापमान के कारण एयर कंडीशनर अब विलासिता नहीं, बल्कि जीवन की अनिवार्यता बन गए हैं। कृत्रिम मेधा (एआई) द्वारा संचालित डेटा सेंटर निरंतर भारी मात्रा में विद्युत की मांग कर

रहे हैं। सेमीकंडक्टर निर्माण, उन्नत विनिर्माण, मेट्रो रेल प्रणाली और डिजिटल बुनियादी ढांचे के लिए एक विश्वसनीय, अबाध विद्युत स्रोत अब राष्ट्रीय संप्रभुता की पहली शर्त है।

एक संरचनात्मक विभीषिका

विद्युत की मांग उस गति से बढ़ रही है जिसकी कल्पना एक दशक पूर्व असंभव थी। हाल के ग्रीष्मकाल में भारत की विद्युत मांग ने नवीन शिखर स्पर्श किए हैं। उत्तर और मध्य भारत में चलने वाली भीषण लू के कारण लाखों घरों में एक साथ एयर कंडीशनर सक्रिय हो जाते हैं। ऊष्मा की प्रत्येक बढ़ती इकाई विद्युत के उपयोग को बढ़ाती है, जिससे पारेषण प्रणालियां और उत्पादन क्षमता उस दबाव का सामना करती हैं जो पहले कभी अनुभव नहीं किया गया था। यहां जलवायु परिवर्तन अब केवल एक पर्यावरणीय समस्या नहीं, बल्कि एक गंभीर संरचनात्मक संकट बनकर उभरा है।

विडंबना यह है कि मांग में यह उछाल उस समय आ रहा है जब भारत ने नवीकरणीय ऊर्जा के विस्तार में असाधारण प्रगति की है। भारत विश्व के सबसे तीव्र गति से बढ़ते सौर ऊर्जा बाजारों में से एक बन गया है, और इसकी पवन ऊर्जा क्षमता का भी विस्तार हो रहा है। नवीकरणीय ऊर्जा अब भारत की दीर्घकालिक ऊर्जा रणनीति का एक अनिवार्य स्तंभ है, जिसमें वृहत कॉर्पोरेट निवेश और महत्वाकांक्षी सरकारी लक्ष्य सम्मिलित हैं।

अक्षय ऊर्जा का विरोधाभास और ग्रिड की जड़ता

किंतु अक्षय ऊर्जा की सफलता का अर्थ अनिवार्य रूप से विद्युत सुरक्षा नहीं है। सौर पैनल केवल दिन के प्रकाश में ऊर्जा उत्पन्न करते हैं और पवन ऊर्जा का प्रतिफल मौसम के आवेगों पर निर्भर है। कोयले या कच्चे तेल के विपरीत, विद्युत का राष्ट्रीय स्तर पर संचयन अत्यंत दुरूह है। उत्पादित प्रत्येक इकाई का या तो तत्काल उपयोग होना चाहिए, या उसे उन विधियों से संचित करना चाहिए जो भौगोलिक रूप से सीमित और आर्थिक रूप से अत्यधिक महंगी हैं।

इसका परिणाम एक विचित्र विरोधाभास के रूप में सामने आता है। यद्यपि भारत के पास पर्याप्त स्थापित उत्पादन क्षमता है, फिर भी वह संध्या के समय पीक शॉर्टेज का सामना करता है, जब सौर ऊर्जा का प्रवाह रुक जाता है किंतु उपभोग का स्तर उच्चतम बना रहता है। समस्या अब केवल अधिक विद्युत उत्पन्न करने की नहीं, बल्कि सही समय पर सही मात्रा में विद्युत उपलब्ध कराने की है।

भारत का यह विद्युत संक्रमण धीरे-धीरे ग्रिड को सबसे कमजोर कड़ी बना रहा है। देश का अधिकांश पारेषण बुनियादी ढांचा उन विशाल कोयला आधारित संयंत्रों के लिए निर्मित किया गया था जो खनन क्षेत्रों के समीप स्थित थे। नवीकरणीय ऊर्जा ने उस चित्र को पूर्णतः बदल दिया है। आज राजस्थान और गुजरात में विशाल सौर पार्क हैं और तमिलनाडु एवं कर्नाटक में पवन फार्म। इस विद्युत को सुदूर औद्योगिक केंद्रों और विस्तृत महानगरों तक पहुँचाने के लिए एक ऐसे जटिल पारेषण तंत्र की आवश्यकता है जो हजारों किलोमीटर के अंतराल पर होने वाले अनिश्चित विद्युत प्रवाह को नियंत्रित कर सके। ग्रिड के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया जारी है, किंतु मांग का प्रवेग उससे कहीं अधिक तीव्र है।

संचयन का संकट और कोयले की अनिवार्यता

विद्युत संचयन की तकनीकें अभी भी अपनी शैशवावस्था में हैं। यद्यपि वैश्विक स्तर पर बैटरी ऊर्जा संचयन प्रणालियां सस्ती हुई हैं, किंतु भारत की विशाल आवश्यकताओं के लिए उन्हें स्थापित करने हेतु आवश्यक निवेश खगोलीय है। एक अन्य

समाधान पम्प हाइड्रो स्टोरेज है, किंतु उपयुक्त स्थल विरल हैं और पर्यावरणीय स्वीकृतियां प्राप्त करना एक समयसाध्य प्रक्रिया है। संचयन क्षमता की इसी सीमा के कारण नवीकरणीय ऊर्जा चौबीस घंटे अबाध विद्युत प्रदान करने में असमर्थ है।

इस परिदृश्य में, कोयला एक असहज किंतु अपरिहार्य स्थिति में बना हुआ है। महत्वाकांक्षी जलवायु लक्ष्यों के पश्चात भी, भारत की अधिकांश विद्युत का उत्पादन आज भी कोयले के दहन से ही होता है। यह आज भी बेसलोड उत्पादन का मेरुदंड है, जो मौसम की परवाह किए बिना निरंतर ऊर्जा प्रदान करता है। विश्लेषक अक्सर भारत के ऊर्जा भविष्य को कोयले और नवीकरणीय ऊर्जा के मध्य एक बाइनरी चुनाव के रूप में प्रस्तुत करते हैं, किंतु यथार्थ में यह संक्रमण अत्यंत जटिल है। कोयले का तीव्र परित्याग ग्रिड को अस्थिर कर सकता है, जबकि इसकी मंद विदाई नवीकरणीय ऊर्जा के एकीकरण में विलंब कर सकती है, जो अंततः राष्ट्र की दीर्घकालिक प्रतिस्पर्धात्मकता को प्रभावित करेगा।

विद्युत के नए भस्मासुर

भविष्य का मार्ग प्रतिस्थापन का नहीं, बल्कि सह-अस्तित्व का होगा। तीव्र शहरीकरण भारत की विद्युत स्थिति के लिए एक और बड़ी चुनौती है। 2050 तक, करोड़ों भारतीय महानगरों में निवास करेंगे, जहां प्रति व्यक्ति विद्युत उपभोग ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में कहीं अधिक है। गगनचुंबी अट्टालिकाओं, मेट्रो प्रणालियों, इलेक्ट्रिक परिवहन और इंटरनेट आधारित वाणिज्य ने विद्युत की मांग का वह स्तर निर्मित किया है जो अभूतपूर्व है।

एआई इस चित्र को और भी जटिल बनाती है। एआई बुनियादी ढांचे के निर्माण की वैश्विक दौड़ ने विद्युत के लिए एक समांतर महायुद्ध को जन्म दिया है। विशाल डेटा सेंटर निरंतर सक्रिय रहते हैं और एक लघु शहर के बराबर ऊर्जा का उपभोग करते हैं। जैसे-जैसे भारत स्वयं को एक वैश्विक डिजिटल अर्थव्यवस्था के रूप में प्रतिष्ठित कर रहा है, डेटा इंफ्रास्ट्रक्चर विद्युत उपभोग का मुख्य चालक बनेगा। अतः भारत के एआई लक्ष्य केवल एल्गोरिद्म और सेमीकंडक्टर चिप्स के विषय में नहीं हैं, बल्कि वे एक विश्वसनीय और अटूट विद्युत प्रवाह की मांग करते हैं।

धरातल के ईंधन से ऊपर के तारों तक

ऊर्जा सुरक्षा के क्षेत्र में एक मौन क्रांति घटित हो रही है। 20वीं सदी में ऊर्जा सुरक्षा का अर्थ तेल क्षेत्रों और कोयला भंडारों तक पहुंच था। 21वीं सदी में इसका अर्थ रेसिलिएंट एनर्जी ग्रिड, वृहत स्तर का संचयन, विविध नवीकरणीय स्रोत, खुले बाजार और डिजिटल रूप से प्रबंधित पारेषण नेटवर्क है। रणनीतिक परिसंपत्ति अब भूमि के नीचे दबे ईंधन से विस्थापित होकर सिर के ऊपर खिंचे तारों की ओर बढ़ चुकी है।

यह विवर्तन भू-राजनीतिक निहितार्थ भी वहन करता है। जो राष्ट्र सस्ती और निम्न-कार्बन विद्युत का उत्पादन कर सकेंगे, वे ही वैश्विक विनिर्माण निवेश को आकर्षित करेंगे। हरित हाइड्रोजन से लेकर इलेक्ट्रिक वाहनों और सेमीकंडक्टर निर्माण तक, उद्योग अब बिजली की स्थिरता, मूल्य और कार्बन तीव्रता के आधार पर अपने केंद्रों का चयन कर रहे हैं। इस दृष्टि से, विद्युत अब केवल एक इनपुट नहीं, बल्कि आर्थिक प्रतिस्पर्धा का निर्णायक कारक बन चुकी है।

अगला दशक इस बात की परीक्षा होगा कि क्या भारत केवल स्थापित मेगावाट का उत्सव मनाने से आगे बढ़कर यह सुनिश्चित कर सकता है कि वे मेगावाट वास्तव में वहां पहुंचें जहां उनकी आवश्यकता है। अगला ऊर्जा संकट कोयले के मैदानों या तेल के जहाजों से नहीं आएगा; वह तब आएगा जब विद्युत की मांग उस बुनियादी ढांचे को लांघ जाएगी जो एक विद्युतीकृत अर्थव्यवस्था को सहारा देने के लिए बनाया गया है। अब मुख्य प्रश्न यह नहीं है कि जलवायु परिवर्तन और शहरीकरण के इस युग में भारत के पास पर्याप्त ईंधन है या नहीं। वास्तविक प्रश्न यह है कि क्या भारत के पास पर्याप्त विद्युत है?

इतिहास गवाह है, जो राष्ट्र अपनी ऊर्जा की धमनियों को नियंत्रित नहीं कर पाता, उसका उत्कर्ष केवल एक स्वप्न बनकर रह जाता है।

वैश्विक समुद्री शासन का नया सवेरा

कल्ट करंट टीम

वैश्विक समुद्री क्षेत्र आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और ऑटोमेशन के कारण एक ऐतिहासिक तकनीकी बदलाव के दौर से गुजर रहा है। इसी कड़ी में, अंतरराष्ट्रीय समुद्री संगठन द्वारा मैरीटाइम ऑटोनॉमस सरफेस शिप्स (मास) सेफ्टी कोड को मंजूरी देना वैश्विक समुद्री शासन में एक मील का पत्थर है। मई 2026 में स्वीकृत यह कोड 1 जुलाई 2026 से गैर-अनिवार्य रूप से लागू होगा, जिसे 2028 तक औपचारिक रूप से अपनाकर 2032 से पूरी तरह अनिवार्य करने का लक्ष्य है।

यह फ्रेमवर्क स्वायत्त नेविगेशन, उपग्रह संचार और एआई-आधारित प्रणालियों के लिए कड़े मानक तय करता है। चूंकि वैश्विक व्यापार का 80 प्रतिशत से अधिक हिस्सा समुद्री मार्गों से होता है, इसलिए स्वायत्त जहाजों के आने से सुरक्षा, साइबर खतरों, बीमा और कानूनी जिम्मेदारी जैसी चुनौतियां बढ़ेंगी। हालांकि, यह कोड स्पष्ट करता है कि तकनीकी प्रगति के बावजूद जहाज का 'मास्टर' ही अंतिम रूप से जिम्मेदार होगा, जो यह दर्शाता है कि भविष्य पूरी तरह मानव-रहित जहाजों का नहीं, बल्कि मानव-मशीन के साझा तालमेल का होगा।

भारत के लिए अवसर और चुनौतियां

एक प्रमुख समुद्री देश के रूप में, भारत के लिए यह बदलाव 'मैरीटाइम अमृत काल विजन 2047' को साकार करने का सुनहरा अवसर है।

1. **तकनीकी सुदृढ़ता:** भारत का 'डिजिटल सेंटर ऑफ एक्सीलेंस फॉर मैरीटाइम एंड लॉजिस्टिक्स' और इसरो का नाविक (NavIC) सिस्टम हिंद महासागर क्षेत्र में स्वायत्त जहाजों को सटीक नेविगेशन सहायता दे सकते हैं।
2. **स्मार्ट पोर्ट:** जवाहरलाल नेहरू पोर्ट अथॉरिटी जैसे बंदरगाह पहले से ही स्मार्ट लॉजिस्टिक्स और डिजिटल ट्रैफिक प्रबंधन अपनाकर इस नए दौर के लिए तैयार हो रहे हैं।
3. **आईटी नेतृत्व:** टीसीएस, इंफोसिस और टेक महिंद्रा जैसी भारतीय कंपनियां एआई और साइबर सुरक्षा में अपनी विशेषज्ञता से स्वायत्त शिपिंग को मजबूत कर सकती हैं।

निष्कर्षतः भारत के सामने असली चुनौती अपने विशाल नाविक कार्यबल का कौशल विकास करने की है ताकि नौकरियां सुरक्षित रहें।

प्रशांत का संकुचन

अनवर हुसैन

वाशिंगटन के सामरिक शब्दकोश से 'इंडो' शब्द का विलोपन केवल एक नामकरण परिवर्तन नहीं, बल्कि हिंद-प्रशांत की संकल्पना पर मडं राते अनिश्चितता के बादलों का आधिकारिक प्रतिवेदन है। यह पोटोमैक के 'लेनदेन संबंधी यथार्थवाद' और वैश्विक साझीदारियों के मध्य बढ़ते अंतराल का साक्ष्य है।

16 जून 2026 की वह तिथि वैश्विक सामरिक मानचित्र पर एक विवर्तनिक विस्थापन के रूप में अंकित की जाएगी। अमेरिकी रक्षा विभाग ने एक ऐसा निर्णय लिया जिसने 2018 में निर्मित उस सामरिक अधि-वृतांत को ही पलट दिया, जिसे 'यूएस इंडो-पैसिफिक कमांड' के रूप में पूजा जा रहा था। नाम बदलकर पुनः 'यूएस पैसिफिक कमांड' करना केवल एक प्रशासनिक सुधार नहीं है, बल्कि यह उस 'रणनीतिक संकुचन' का संकेत है, जिसकी आहट डोनाल्ड ट्रम्प के दूसरे कार्यकाल के प्रारंभ से ही सुनाई दे रही थी। 2018 में जब ट्रम्प प्रशासन ने ही 'इंडो' शब्द को इस कमांड के साथ जोड़ा था, तब इसे भारत की बढ़ती महत्ता और 'दो सागरों के संगम' की एक विधिक स्वीकारोक्ति माना गया था। किंतु आज, वही वाशिंगटन अपनी

कूटनीतिक पदचापों को पीछे खींचता प्रतीत हो रहा है, जिससे हिंद-प्रशांत क्षेत्र के उन राष्ट्रों के मध्य एक 'सामरिक वर्टिको' उत्पन्न हो गया है जो अब तक अमेरिकी सुरक्षा छतरी के नीचे स्वयं को सुरक्षित मान रहे थे।

भूगोल का द्वंद्व और परिभाषाओं का कुरुक्षेत्र

हिंद-प्रशांत की अवधारणा सदैव ही भौगोलिक अस्पष्टता और सामरिक महत्वाकांक्षाओं के संगम पर टिकी रही है। इस क्षेत्र की सीमाओं को लेकर कभी भी कोई वैश्विक सर्वसम्मति नहीं बन सकी। जहां वाशिंगटन हिंद-प्रशांत को अपने पश्चिमी तट से लेकर भारत के पश्चिमी तट तक ही सीमित मानता रहा, वहीं नई दिल्ली का दृष्टिकोण अधिक वृहत था, जिसमें अमेरिका के पश्चिमी तट से लेकर पूर्वी अफ्रीका के जलमार्गों तक का विस्तार सम्मिलित था। परिभाषाओं का यह द्वंद्व 'इंडो-पैसिफिक' की शक्ति भी था और इसकी सबसे बड़ी दुर्बलता भी।

नाम से 'इंडो' शब्द का विलोपन इसी 'डेफिनिशनल एंबिगुइटी' अर्थात परिभाषा की अनिश्चितता का चरमोत्कर्ष है। प्रश्न यह उठता है कि क्या अमेरिका अब भारत को उस सामरिक धुरी से पृथक कर रहा है, जिसे कभी इक्कीसवीं सदी की 'निर्णायक साझीदारी' कहा गया था? कूटनीति में शब्दावली केवल वर्णों का समूह नहीं होती; वह संप्रभुता और प्रतिबद्धता का आधिकारिक प्रमाणपत्र होती है। जब पोटोमैक अपने सबसे महत्वपूर्ण सैन्य कमांड (कमांड) के नाम से 'हिंद' महासागर की प्रतिध्वनि को विलोपित करता है, तो वह अनजाने में ही चीन जैसे विस्तारवादी खिलाड़ियों को वह 'सामरिक स्थान' प्रदान कर देता है जिसे भरने के लिए बीजिंग दशकों से लालायित रहा है।

ट्रम्प 2.0: लेनदेन संबंधी यथार्थवाद का पुनरुत्थान

जनवरी 2025 में जब डोनाल्ड ट्रम्प ने पुनः व्हाइट हाउस की देहरी लांघी, तभी से यह स्पष्ट था कि उनकी 'अमेरिका फर्स्ट' नीति का दूसरा संस्करण अधिक निष्ठुर और लेनदेन

संबंधी होगा। 'क्वाड' जैसे समूहों, जिसमें भारत, जापान और ऑस्ट्रेलिया सम्मिलित हैं, के भविष्य पर संशय के बादल तभी से मडं रा रहे थे। यद्यपि रक्षा विशेषज्ञ 'ऑकस' और 'स्क्वाड' जैसे सुरक्षा-केंद्रित गठबंधनों को लेकर आशावान थे, किंतु ट्रम्प की कूटनीति में 'साझा मूल्यों' से अधिक 'साझा लागत' का महत्व सर्वोपरि रहा है।

प्रशांत कमांड का नामकरण परिवर्तन इसी 'ट्रांजैक्शनल रियलिज्म' का परिणाम प्रतीत होता है। वाशिंगटन का अचानक 'जी-2' अर्थात अमेरिका-चीन के मध्य किसी गुप्त समझौते की संभावना वाले संकेत देना यह सिद्ध करता है कि इंडो-पैसिफिक अब अमेरिका के लिए एक 'सामरिक आदर्श' के बजाय केवल एक 'आर्थिक विवशता' रह गया है। यह विवर्तन उन सहयोगी राष्ट्रों के लिए एक चेतावनी है जो वाशिंगटन की सुरक्षा गारंटी को एक शाश्वत सत्य मानते आए थे। अब उन्हें यह स्वीकार करना होगा कि पोटोमैक की लहरें अब केवल उन्हीं तटों की रक्षा करेंगी जहां अमेरिकी निवेश का लाभ उसके सामरिक जोखिम से अधिक होगा।

संस्थागत जड़ता बनाम प्रतीकात्मक विस्थापन

यद्यपि अमेरिकी युद्ध विभाग ने एक आधिकारिक वक्तव्य जारी कर यह स्पष्ट किया है कि नाम परिवर्तन से कमांड के मिशन, उत्तरदायित्व के क्षेत्र या परिचालनगत क्षमताओं पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, किंतु सामरिक जगत में प्रतीकों का महत्व भौतिक शक्ति से कम नहीं होता। 'यूएस पैसिफिक कमांड' की ओर लौटना उस 'एशिया-पैसिफिक' युग की याद दिलाता है जहां भारत इस समीकरण का एक सक्रिय अंग नहीं था।

यदि कार्यप्रणाली अपरिवर्तित रहनी है, तो नाम बदलने की यह कूटनीतिक छटपटाहट क्यों? इसका उत्तर वाशिंगटन की उस आंतरिक कशमकश में छिपा है, जहां वह अपनी वैश्विक जिम्मेदारियों के बोझ को कम करना चाहता है। यह एक 'रणनीतिक विलगन' की प्रस्तावना है। भारत और अन्य क्षेत्रीय शक्तियों ने अपनी विदेश नीति, सुरक्षा दृष्टिकोण और व्यापारिक हितों को जिस 'इंडो-पैसिफिक' धुरी पर केंद्रित किया था, अब वह धुरी स्वयं ही कंपकंपा रही है। यह नाम परिवर्तन एक ऐसा मनोवैज्ञानिक प्रहार है जो सहयोगियों को अपनी 'सामरिक

2018 में जिस 'इंडो-पैसिफिक' शब्दावली को चीन के प्रतिकार हेतु एक सामरिक कवच बनाया गया था, आज उसी कवच को त्यागने की चेष्टा वाशिंगटन के सहयोगियों के मध्य एक अस्तित्वगत संशय उत्पन्न कर रही है। पोटोमैक की यह कूटनीतिक वापसी एशिया के क्षेत्रीय खिलाड़ियों को अपनी सुरक्षा साझीदारियों के विविधीकरण हेतु विवश कर रही है।

स्वायत्तता' को पुनः खोजने के लिए विवश कर रहा है।

दो समुद्रों का संगम: शिंजो आबे की विरासत पर संकट

आधुनिक 'इंडो-पैसिफिक' की संकल्पना जापान के दिवंगत प्रधानमंत्री शिंजो आबे के उस ऐतिहासिक विजन (Vision) पर आधारित थी, जिसे उन्होंने 'दो समुद्रों का संगम' कहा था। आबे का तर्क था कि हिंद और प्रशांत महासागर को एक एकीकृत सामरिक इकाई के रूप में देखा जाना चाहिए, क्योंकि एक महासागर में उठने वाला ज्वार दूसरे के तटों को प्रभावित किए बिना नहीं रह सकता। इसी दर्शन ने जर्मनी और नीदरलैंड्स जैसे यूरोपीय राष्ट्रों को भी इस सुदूर क्षेत्र में अपनी सामरिक भूमिका खोजने के लिए प्रेरित किया था।

किंतु 'इंडो' शब्द के विलोपन से आबे की वह 'मैरीटाइम सिम्फनी' अब बेसुरी प्रतीत होने लगी है। यदि प्रशांत अब स्वयं को हिंद महासागर से विलग कर लेता है, तो समुद्री सुरक्षा का वह एकीकृत ढांचा छिन्न-भिन्न हो जाएगा जिसे पिछले आठ वर्षों में अत्यंत परिश्रम से निर्मित किया गया था। यह विखंडन चीन की उस 'स्ट्रिंग ऑफ पर्ल्स' रणनीति के लिए एक संजीवनी सिद्ध हो सकता है, जिसे रोकने के लिए ही 'इंडो-पैसिफिक' का दुर्ग बनाया गया था।

भविष्य का मानचित्र: विविधीकरण ही सुरक्षा है

2026 के इस संक्रमण काल में, समान सोच वाले राष्ट्रों को अब एक 'पोस्ट-वाशिंगटन' सुरक्षा व्यवस्था के लिए मानसिक रूप से सन्नद्ध होना होगा। सुरक्षा साझीदारियों में विविधता लाना अब केवल एक विकल्प नहीं, बल्कि एक अस्तित्वगत अनिवार्यता है। यदि अमेरिका अपनी भूमिका को केवल प्रशांत तक संकुचित कर रहा है, तो भारत और उसके सहयोगियों को अपने 'स्वतंत्र सुरक्षा आर्किटेक्चर' को सुदृढ़ करना होगा।

पेंटागन के बयानों की शुष्कता चाहे जो भी दावा करे, किंतु सत्य यही है कि कूटनीति के आकाश में अब एक नया नक्षत्र उदित हो रहा है—'सामरिक एकांतवास'। प्रशांत कमांड का नाम बदलना उस 'नियम-आधारित व्यवस्था' के अंत की शुरुआत हो सकती है, जिसका नेतृत्व अमेरिका ने द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात किया था।

धुंधलाता क्षितिज

यह विश्लेषण हमें उस कड़वे यथार्थ की ओर ले जाता है जहां 'इंडो-पैसिफिक' अब केवल एक राजनैतिक मुहावरा बनकर रह जाने के संकट से जूझ रहा है। वाशिंगटन की यह चाल सिद्ध करती है कि महाशक्तियों की प्रतिबद्धताएं सदैव 'परिवर्तनशील' होती हैं, केवल 'राष्ट्रीय हित' ही शाश्वत हैं। 'इंडो' शब्द का हटना भारत के लिए एक कड़ा संदेश है कि उसे अपने समुद्री हितों की रक्षा के लिए अब पोटोमैक के निर्णयों की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए।

आने वाले वर्षों में, यदि यह क्षेत्र एक एकीकृत राजनैतिक ढांचे के रूप में जीवित रहना चाहता है, तो इसकी ऊर्जा का केंद्र वाशिंगटन नहीं, बल्कि दिल्ली, टोक्यो और कैनबरा को बनना होगा। प्रशांत का यह संकुचन वास्तव में भारत की सामरिक परिपक्वता के लिए एक महान अवसर है।

क्या फिल्मों को अलविदा कह रही हैं तृषा?

दक्षिण भारतीय सिनेमा की लोकप्रिय अभिनेत्री तृषा कृष्णन इन दिनों अपनी किसी नई फिल्म नहीं, बल्कि एक वायरल अफवाह को लेकर चर्चा में हैं। सोशल मीडिया पर अचानक यह खबर फैल गई कि तृषा अभिनय की दुनिया से संन्यास लेने वाली हैं। देखते ही देखते यह चर्चा इतनी तेजी से फैल गई कि प्रशंसकों के बीच निराशा और अटकलों का दौर शुरू हो गया। कई लोगों ने इसे सच मानते हुए उन्हें भावुक संदेश तक लिख डाले।

लेकिन कहानी में असली मोड़ तब आया, जब खुद तृषा ने बड़े ही मजेदार अंदाज में इन अफवाहों की हवा निकाल दी। उन्होंने व्यंग्यपूर्ण प्रतिक्रिया देते हुए साफ कर दिया कि फिल्मों को अलविदा कहने का उनका फिलहाल कोई इरादा नहीं है। बस फिर क्या था, सोशल मीडिया पर मीम्स और मजेदार टिप्पणियों की बाढ़ आ गई। किसी ने लिखा, 'रिटायरमेंट की खबर तो अफवाहों की होनी चाहिए, तृषा की नहीं।' कुल मिलाकर, इस पूरे घटनाक्रम ने एक बार फिर साबित कर दिया कि फिल्मी दुनिया में जितनी तेजी से गॉसिप जन्म लेती है, उतनी ही तेजी से उसका सच भी सामने आ जाता है।

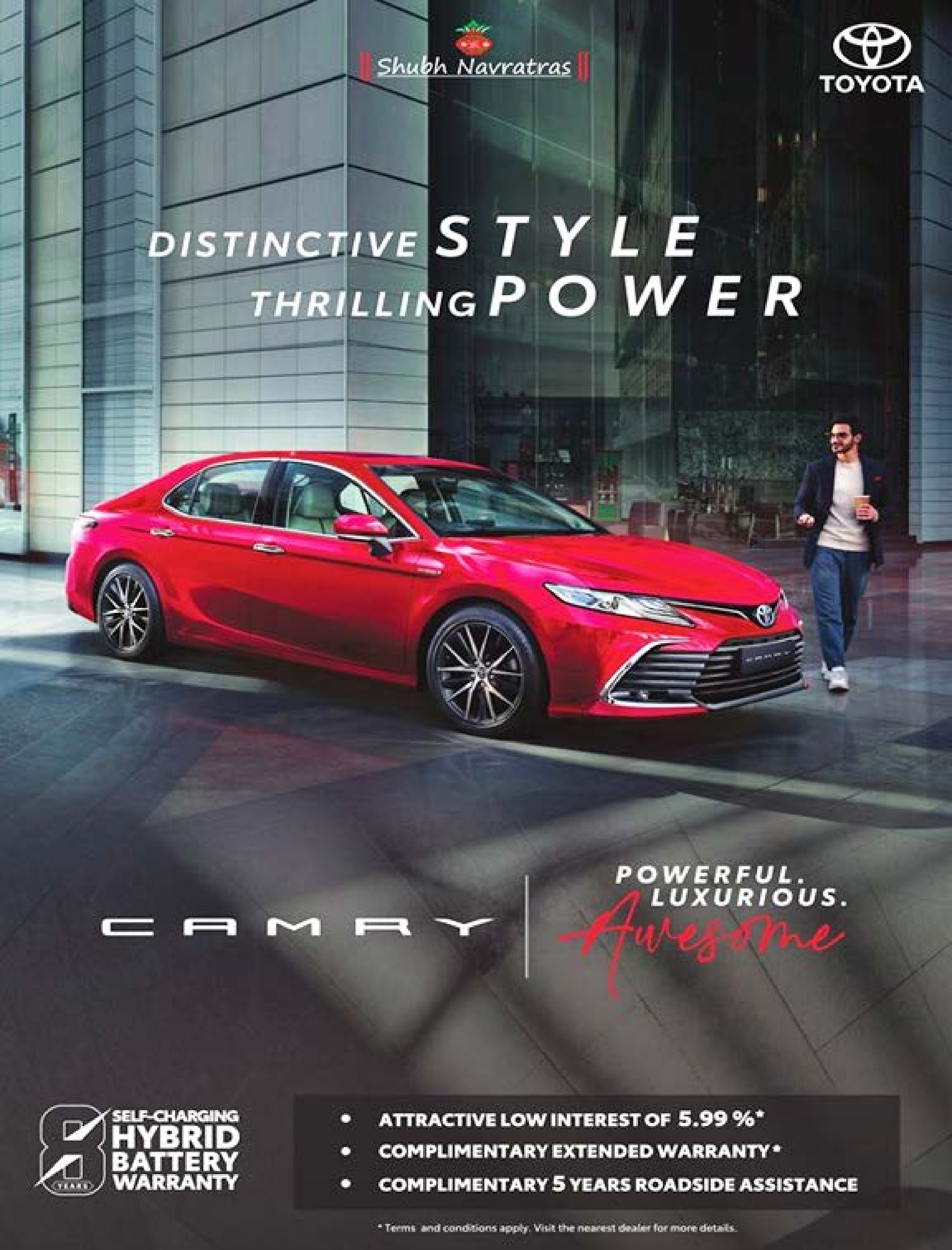

Shubh Navratras
TOYOTA
DISTINCTIVE STYLE
THRILLING POWER
CAMRY
POWERFUL.
LUXURIOUS.
Awesome
SELF-CHARGING HYBRID BATTERY WARRANTY
8 YEARS
• ATTRACTIVE LOW INTEREST OF 5.99 %*
• COMPLIMENTARY EXTENDED WARRANTY*
• COMPLIMENTARY 5 YEARS ROADSIDE ASSISTANCE
* Terms and conditions apply. Visit the nearest dealer for more details.

RNI TITLE CODE : DELENG19447

MARC SANITATION PVT. LTD.
A-2, S.M.A. Co-op. Industrial Estate, G.T. Karnal Road, Delhi-110 033
Ph: 27691410, Fax: 011-27691445/27692295 E-mail: info@marcindia.com Website : www.marcindia.com